॥ ॐ ॥

त्रिलता स्तुतिमुक्तावली

एषाच रावलपिंडी वास्तव्य, मुह्यालवंश भूषण सकल सद्गुण
रत्नाकर श्री १०८ पंडित विष्णुदत्ताना
मात्मजेन पुरातन संस्कृत
पाठशालाध्यापकेन
अभिनव भर्तृहरि

कविरत्न पं० तेजभानु शर्म्मणा

विरचिता च प्रकाशिता।

हाल, अम्बाला सिटी मकान नं० ३२६५ काजीवाड़ा।

सन् १९५६-सं० २०१३ वैशाखी
अर्द्धकुम्भी हरिद्वार।

[मूल्य ॥)

कविरत्नाऽयत्तम्।

त्रिलता स्तुति मुक्तावली अर्थात् तीन लड़ा मोतियों का हार श्रीपति पादार्पण

प्राक्कथनम्

सज्जन समुदाय ! यह स्तुति रूप काव्य [illegible] कविरत्न श्री [illegible] जी ने रचा। इसकी संस्कृत टीका योग्य थी जिस में शब्द सिद्धि [illegible] अर्थालङ्कार छन्द और कोषादि प्रमाण लिखे जाते परन्तु हिन्दु जनता हिन्दी भाषा टीका पढ़ कर अर्थ ज्ञान का लाभ करे अतः हिन्दी भाषा में टीका लिखी गयी, संस्कृत ज्ञाता विद्वानों में स्वभावज गुण है कि अन्य की कविता पढ़ कर कोई सज्जन प्रसन्न होते हैं प्रत्युत कई सज्जन [illegible] पर ही दृष्टि रखते हैं उन को श्लोक मात्र से ही ज्ञान हो सकता है. बृटेन राज्य में गो जाति और ब्राह्मण वा संस्कृत विद्या की जो हानि हुई वह अभूत पूर्व थी, अतः प्रथम पंचदशी नाम ट्रैकट लिखा गया जिस का वर्णन परिशिष्ट भाग में लिखा हुआ पढ़े पर कुछ लाभ न हुआ, अतः विद्या पंचविंशति नाम ट्रैकट रचा गया जिस को पढ़ कर स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री भण्डारी जी ने लाहौर में प्रसन्न हो कर शीघ्र हस्ताक्षर दिये परन्तु: राज्य भाषा ही सर्वदा सर्वोपरि होती है तो संस्कृत विद्या की कैसे उन्नत होती, पुनः [illegible] काव्य पांच सौ श्लोकों में रचा गया भारतवर्ष के अनेक नगरों में सद् विद्वानों को उपहार भेजा परन्तु की दश विद्वानों के सन्देश पहुंचे परमार्थी होने पर भी सैंकड़ों रुपये अपने पास से खर्च करे छपवाने वालो का क्या आदर हुआ, अन्ततोगत्वा यह कथन अवश्य है कि ब्राह्मण जाति में संघ शक्ति और परस्पर प्रेम न होने से जाति अति निर्बल हो गई जिस से सवत्र अपमान हो रहा है और एक वर्ण सृष्टि का नियम लागू हो रहा है अब यह अपूर्व काव्य आपकी भेट किया जाता है उत्तर देना आपकी इच्छा और श्री काव्य रत्न जी के यत्न का सफल करना आप का कर्त्तव्य है। इतिशम्

पं० राधाकृष्ण वैद्य भूषण शास्त्री
रावलपिंडी हाल मुहल्ला [illegible] अम्बाला शहर

अथ स्तुति मुक्तावली

संस्कृत विद्या बोध बिन, कठिन श्लोक का सार ।
हिन्दी भाषा में लिखी, टीका सत्य विचार ॥

प्राचां वाचा मथार्वाचां मनसां दूरवर्त्मने ।
अप्रतर्क्याय ऽप्रमेयाय ज्योतिषांज्योतिषे नमः ॥१॥

भा० टी०—प्राचीन ब्रह्मादि देवगण तथा अर्वाचीन ऋषि, मुनि कवि आदि के वाणी और मन से अगोचर और तर्क से परे अनन्त रूप सूर्य, चन्द्र आदि के प्रकाश करनेहारे परमात्मा को नमस्कार ।

कर्तृणां योऽस्ति मूलं श्रुतिशिखर गिरस्संकुचन्तीरितुं यम् ।
पूर्णं पूर्णेन येनाऽखिल जगति नमस्कुर्वते नाम यस्मै ॥
प्रादुर्भूतन्तु यस्मात्त्रिभुवन ममितं यस्य भासा विभाति ।
यस्मिन्नन्ते विरामस्त्वमपि सभवमे श्रेयसे देव देव ॥२॥

भा० टी०—जो परमात्मा ब्रह्मादि देव गणों का मूल रूप है । जिसकी महिमा वर्णन में वेद उपनिषद् आदि भी असमर्थ होते हैं । जिसे पूर्ण करके सब पूर्ण है और सकल संसार जिसके आगे नमस्कार करते हैं । जिसमें यह ब्रह्माण्ड अनन्त प्रकट हुआ है और जिसकी सत्ता से प्रकाशमान है जिसमें अन्त में समाप्ति है । सो तुम हे देव हमारे कल्याण सुख के लिये हो । इसमें सम्बोधन सहित व्याकरण शास्त्र की सात विभक्तियां आती हैं ॥२॥

वेतण्ड गण्ड युगमण्डित तुण्ड खण्ड
मुद्दण्ड विघ्न मण खण्डन चण्ड दण्डम् ।
वन्देऽनवद्य वर वन्द्य पदारविन्दम्
हेरम्ब मेकरदनं सदनं निधीनाम् ॥३॥

भा० टी०—हस्ती के गण्ड युगल से शोभित मुख वाले, घोर विघ्नों को दूर करने में अति बलवान् सर्व कर्मो में आदि पूज्य चरण निधियों के गृह एक दन्त गणेशदेव को हम नमस्कार करते हैं।

मत्वा पत्युरनादरं पितृगृहे सोढुं न शक्ता सती
स्वात्मानं तु जुहाव हव्यदहने मन्यौ महामन्युना ।
भूयो जन्मनि पर्वतऽतितपसा तल्लब्धि लब्धोद्भवा
अस्मभ्यं ददतां प्रमोद मतुलं गौर्याः प्रमोदाँकुराः ॥४॥

भा० टी०—दक्ष नाम पिता के गृह में पति देव शंकर का निरादर मानकर सहन क करती हुई सती नाम, दक्ष कन्या यज्ञ में महाक्रोध वश अपने देह को दग्ध करती हुई पुनः जन्म में हिमाचल की कन्या होकरपार्वती होकर घोर तपो बल से शंकर प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले हर्ष के अंकुर हमें भी सदा अति हर्ष देने हों। अत्र पुराण कथा ॥४॥

ब्रह्म शक्तिश्च विष्णुश्च शिवोबुद्धो जिनोऽस्तुवा ।
कर्त्ताऽकर्ताऽथवा कर्म यस्मै कस्मै नमो नमः ॥५॥

भा० टी०—वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं कोई शक्ति रूप, कोई विष्णु रूप, बौद्ध, बुद्ध और जैन नैयायिक कर्त्ता, सांख्य, अकर्त्ता, मीमांसक कर्म रूप, जो भी वह हो हम बार बार उसे प्रणाम करते हैं, वह अनन्त प्रभाव है ॥५॥

विद्यारत्न प्रयत्न दुर्लभ तमं पिण्डीपुरेऽस्मिन् पुरा
स्वान्तेवासि शतेषु दीनदयया चाप्युद्धरन्संस्कृतिम् ।
निश्शुल्कं द्विज शिक्षण व्रतपरो विश्राणयामासयः
तं वन्दे पितरं विदांकुलपतिं श्रीविष्णुदत्ताऽभिधम् ॥६॥

भा० टी०—विक्रमी १६०० शताब्दि में पंजाब केसरी श्री रणजीतसिंह महाराजा के पंजाब राज्य में रावलपिण्डी आदि नगरों में मुगल राज्य के अत्याचार से संस्कृत विद्या नष्ट-भ्रष्ट हो गई। उस समय में पिता जी का जन्म हुआ। उन्होंने काशी आदि धर्म स्थानों में वास करके विद्या प्राप्त की। सारी आयु भर देश का कल्याण करते हुये पुरातन ऋषि मुनियों की रीति के अनुसार शुल्क अर्थात फीस वेतन आदि न लेकर ब्राह्मण क्षत्रियों को संस्कृत विद्या पढ़ाई और उनके भोजन वस्त्र आदि का सारा प्रबन्ध किया और (सितारा इण्डया) सरदार निहालसिंह तथा रायबहादुर कृपालसिंह सुजानसिंह आदिक ने इसी पाठशाला में ही सन्ध्या, गीता, गायत्री आदि धर्म ग्रन्थ पढ़े तथा श्रीमद्भागवत पाठी अनेक ब्राह्मण पण्डित बने। पोठोहार देश में पूर्णतया संस्कार धर्म कर्म काण्ड का प्रचार किया। विद्यारत्न दान किया। ऐसे श्री विष्णुदत्त जी पण्डित कुलपति पिता जी को हम प्रणाम करते हैं ॥६॥

लक्ष्मीमिव महाविष्णोः गंगामिव पयोनिधेः ।
स्वामिसेवाव्रतां नौमि गंगादेवीं स्वमातरम् ॥७॥

भा० टी०—श्रीविष्णु की लक्ष्मी समान समुद्र की गंगा समान पति सेवा करने हारी गंगा देवी नाम अपनी माता को स्तुति करता हूं ॥७॥

विद्योपदेशेन न केवलेन, दानेन मानेन सहोपचक्रे।
छात्रेषु शास्त्रेषु कृतावगाहः यस्तं समीढे गुरुमोतिरामम् ॥८॥

भा० टी०—केवल विद्या पढ़ाने मात्र से नहीं किन्तु भोजन मान आदि के सहित छात्रगणों में विद्या दान का उपकार किया। स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता विद्यागुरु पंडित मोतीराम जी को प्रणाम कर्ता हूँ ॥८॥

कथंचिदद्याऽपि गता न विस्मृतिं—
वरा महाकाव्य कराः बुधैर्नताः।
सुधा रसास्वादधरा धरातले—
गिरोयदीयाः कविता धुरन्धरा ॥९॥

भा० टीका—किसी प्रकार भी आज समय तक विद्वानों करके मान्य महाकाव्यों के कर्ता गत हुये भी भूले नहीं जिनकी वाणी अमृत समान मधुर रसवाली भूतल में कविता में मुख्य माननीय है। यह कवि स्मरण भी मंगल है ॥९॥

सुपद्यरत्नं परकाव्यसागरान्नतस्करस्येव यशो विमुष्णतः।
विचक्षण स्वांतधराऽतिमाधुरीधरीनिबंधस्यकृतिस्तु दुश्शका ॥

भा० टी०—कविकृत काव्य समद्रसे श्लोक रूपी रत्न चुरानेवाले कवि का यश चौर समान अपयश रूप में होता है, अति मधुर हृदयहारिणी कविता की रचना कठिन और शक्ति से परे है ॥१०॥

स्त्रोत्राणि सम्यञ्चि महान्ति सन्ति
चन्द्रप्रभाभाञ्जि रसोज्वलानि।

इयंहि नीराजन दीपरोचिः
चकास्तु नारायण पादपीठे ॥११॥

भा० टी०—अच्छे रस परिपूर्ण अनेक स्तोत्र रूपी काव्य चन्द्रमा के समान प्रसिद्ध विद्यमान हैं परन्तु यह स्तुति मुक्तावली आरती की ज्योतिर्वत् श्री नारायण के चरणों का प्रकाश करे ॥११॥

चतुर्मुखः पंचमुखश्च षण्मुखो दशाननः पंक्तिशताननोवा ।
गिरातरीतुं हरिगौरवार्णवं प्रभुर्नचेदेकमुखे कियद्बलम् ॥१२॥

भा० टी०—ब्रह्मा जी महादेव स्वामि कार्त्तिक रावण अथवा शेषनाग यदि हरि की महिमा समुद्र को वाणी द्वारा तरने को समर्थ नहीं तब एक मुखवाले मनुष्य में वर्णन की क्या शक्ति हो सकती है ॥१२॥

महद्गुणाब्जग्रसने विधुन्तुदाः खलाश्च दोषांधतमिस्रकौशिकाः
वसन्ति सन्तः क्व परोद्दिधीर्षवो दयालुता विस्तरणोद्यतव्रताः ॥

भा० टी०—महात्मा जनों के गुण रूपी चन्द्रमा के ग्रास करने में राहु रूपी अन्धकार में उल्लू पक्षी समान दुर्जन पुरुष कहाँ ! और लोगों के उद्धार करने की इच्छा वाले दया भाव के विस्तार के नियम में दृढ़ होने वाले सज्जन पुरुष कहाँ—महान् भेद है। यह स्मरण भी मंगलरूप है ॥१३॥

धनार्जनोत्कृष्ट कलास्ति राष्ट्रगीः, द्विजैरतस्त्यक्तमाऽतिदेवगीः ।
परोऽनधीती नरसाऽभिलाषुकःकृतिस्तुकंलोकमलंकरिष्यति ।१४

भा० टी०—राजविद्या अनेक प्रकार के धन संग्रह करने वाली है। इसलिये ब्राह्मणों ने संस्कृत विद्या को त्याग दिया है और इतर

जन संस्कृत विद्या से रहित होने से रसिक नहीं यह स्तुति किस मनुष्य को पढ़ने से शोभायमान करेगी अपितु आयासमात्र कविता होगी ॥१४॥

क्वतन्महत्वं प्रतिभाबलं क्वतद् तदन्तरं मेरुकणोपमंमहत्।
ध्रुवंजराध्वस्तबलोदुराग्रहाद् हरिं स्वदोर्भ्यां परिबद्धु मुत्सुकः॥

भा॰ टी॰—हरि की महिमा कहां हमारा बुद्धि बल कहाँ उनमें मेरु और कण के समान बहुत अंतर है जरा करके निर्बल पुरुष हठ से अपनी भुजा द्वारा सिंह को बाँधने की खुशी में हो एवं यत्न यह है ॥१५॥

मनसावचसाऽप्यगोचरः घुषितोऽयं निगमेषुडिण्डिमः।
पुनरेव ममाऽयमुद्यमः परमेशंकिमु तोषयिष्यति ॥१६॥

भा॰ टी॰—वेदों में डंके की चोट से कहा गया है। ईश्वर मन वाणी से अगोचर है फिर यह हमारा उद्यम परमात्मा को किस प्रकार प्रसन्न करेगा ॥१६॥

परिपूतयशोऽभिवर्णनैः चरितार्थाऽस्तुममाऽखिलाऽपिगीः।
इतिचारुविचार कारणात् प्रणवात्मन् प्रणयामि तेस्तुतिं ॥१७॥

भा॰ टी॰—अति पवित्र प्रभु के यश वर्णनों करके अपवित्र हमारी वाणी सफल हो। इस सुन्दर विचार के कारण हे ओंकार स्वरूप आपकी स्तुति रचना करता हूं ॥१७॥

प्रणमामि भवन्तमव्ययं भुवनेभावुकभाव भावितम्।
मनसावचसा च वर्ष्मणा भगवन्तंप्रियभक्तवत्सलम् ॥१८॥

भा॰ टी॰—संसार में श्रेष्ठ भावों से जाने हुये परम भक्तों के

प्रेमी अविनाशी आप भगवान् को मन, वाणी, शरीर द्वारा प्रणाम करता हूँ ॥१८॥

दृढ़ युक्तिमतंतु सौगतं सहलौकायातिकेन संगतम् ॥
जगदीश्वर संभवभ्रमे शतजल्पैस्तु हठेन लांछितम् ॥१९॥

भा० टी०—युक्ति-प्रधान सुगत बुद्धमत तथा लोकायतक मत से संगति करता हुआ ईश्वर की अस्तित्व में हठ से अनेक युक्ति द्वारा कलंकित है। वह नहीं मानता ॥१९॥

परमात्म निरूपणं परे क्षणिकं ज्ञानमयं प्रपेदिरे।
त्रिविधंस्मवदन्ति यौक्तिका इह सौत्रांतिकमाध्यमार्हताः ॥२०॥

भा० टी०—(क्षणिक विज्ञान मात्मा) आत्मनिरूपण में आत्मा को क्षण क्षण में बदलने वाला ज्ञान ही आत्मा है यह मानते हैं। इस विषय में युक्ति प्रधान सौत्रांतिक, माध्यम, तथा जैन पृथक परस्पर भेद कहते हैं। उनके ग्रंथों में देखें ॥२०॥

मति तन्त्र गवेषणानुगैर्निजशास्त्राणि विनिर्मितानि तैः।
प्रतिवादि विकल्पितोक्तिभिर्जनताया मतिमोह हेतवे ॥२१॥

भा० टी०—अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करने वालों ने सूत्र ग्रन्थ, दर्शन, भाष्य, प्रस्थान पुस्तक रचे। लोकों को भ्रम में डालने के वास्ते वादि प्रतिवादि युक्तियाँ प्रकट कीं जिससे उनके सब मतानुयायी बने ॥२१॥

सगुणं कतिचिच्च निर्गुणं द्विविधंवाऽद्विविधं च नास्तिकाः।
परिपूर्ण मपूर्ण मन्यथा भगवंस्त्वांप्रतिते शशंकिरे ॥२२॥

भा० टी०—हे भगवन् वह मतवादी आपको सगुण ही गुरु अवतारों द्वारा ही मानते हैं। कोई निर्गुण और कोई दोनों प्रकार कोई नास्तिक दोनों प्रकार का नहीं मानते। कोई परिपूर्ण कोई एक-देशी पूर्ण कोई पूर्ण और अपूर्ण स्याद् वाद में इस प्रकार वादी लोग शंका करते हैं ॥२२॥

जगदुद्भव जीवजन्मनी परलोकं च वचोऽपि वैदिकम्।
इतरे प्रतिपेदिरेऽन्यथा यतमाना दृढ तर्क कर्कशाः ॥२३॥

भा० टी०—कोई वादी जगत् की उत्पत्ति प्रलय नहीं मानते। इसका कर्ता कोई नहीं। यह बुद्ध जैन चार्वाकादिमत है। कोई वादी जीव का पुनर्जन्म नहीं मानता तो भस्मीभूतस्य भूतस्य पुनरागमनं कुतः' कोई मुसलिम वा ईसाई आवागमन में और भी मानते हैं। कोई यमलोक स्वर्ग नरक नहीं मान कर ईश्वर को धर्मराज तथा भूमि पर ही स्वर्ग नरक नाम सुख दुःख मानते हैं और कोई वादी वेदों के विषय में अनेक प्रकार की शंका करते। इन पक्षों पर अनेक शास्त्रार्थ खादिखण्डन अद्वैत सिद्धि आदि ग्रन्थों में है। इस समय के विद्वान् जिनका भाव नहीं समझते। वेदों शास्त्रों में विश्वास कम हो गया है। इस समय के प्रताप से अनेक मतमतान्तर प्रकट हैं ॥२३॥

जगदेव मनादि गत्वरं समविश्वस्य न कोऽपि कारकः।
वहुधा प्रतिपादयन्तितं परमैश्वर्य्य विबोध वञ्चिताः ॥२४॥

भा० टी०—जगत् इसी प्रकार अनादि प्रवाह रूपक के हैं। समस्त संसार का कोई कर्ता नहीं परमेश्वर के ऐश्वर्य ज्ञान से रहित होकर वहुत प्रकार का वर्णन करते हैं ॥२४॥

ननु कश्च कथं सकुत्र वा यदि कर्त्ता वदकीदृशा कृतिः ।
ब्रुवते श्रमणाब्रुवा इदं विविध भ्रांतिमिता वृताननाः ॥२५॥

भा० टी०—वादी प्रश्न कर्त्ता है, संसार कर्त्ता कौन किस प्रकार और कहां उसकी कैसी मूर्त्ति है। अनेक प्रकार के भ्रम युक्त जैन भिक्षु आदि कहते हैं, बौद्ध, लोकायत, देवसमाज आदि का यह निश्चय है ॥२५॥

चिति शक्ति रियंतु भौतिकी सह देहेन सदा समुद्भवेत् ।
सह नश्यति तेन सत्वरं नपुनर्जन्म कथा द्रढीयसी ॥२६॥

भा० टी०—यह चेतन शक्ति पांच भूतों द्वारा शरीर के साथ उत्पन्न और शरीर के साथ नाश होती है। जीव का पुनर्जन्म दृढ़ विश्वास योग्य नहीं। यह चार्वाक देवसमाज, आदि कहते हैं ॥२६॥

परलोक विचारणे दृशी नयमो नहियातनादयः ।
इति दण्डविभीषका पुनः सहसा भापयतेऽज्ञपुरुषान् ॥२७॥

भा० टी०—कोई वादी कहते हैं यमलोक का विचार दृढ़ नहीं धर्मराज भी नहीं। स्वर्ग, नरक आदि भी नहीं यह भयानक कथा अज्ञ पुरुषों को बार-बार डराती हैं ॥२७॥

ददते भुविसेश्वरोयमः सुख दुःखं कृतकर्मणां फलम् ।
उपदेश परास्तु मन्वते परलोकं परदेह धारणम् ॥२८॥

भा० टी०—वह ईश्वह ही यम है। लोक में अपने कृत कर्मों का फल सुख दुःख देता है। परलोक दूसरा देह धारण करना है। यह उपदेश द्वारा मानते हैं ॥२८॥

नसुराऽसुरदानवादयो नहि भूतादिक देव योनयः ।
द्विज वाक्य पुराण वर्णिताः सदसीत्थंकथयन्त्यसूयया ॥२९

भा० टी०—देव, दैत्य दानव, भूत प्रेत आदि देवयोनियाँ नहीं, स्वभाववश पुरुषों की संज्ञा हैं। ब्राह्मणों ने पुराण ग्रन्थों में वर्णन किये हैं। कभी देखे नहीं, अतः नहीं है इति निन्दा करते हैं ॥२९॥

यवना अथ योरुपोद्भवा मरणानन्तर जीव संग्रहम् ।
प्रवदन्ति वचो विनिश्चिताः युगपज्जाग्रति सर्गसर्जने ॥३०॥

भा० टी०—मुसलमान तथा योरुपवासी ईसाई मरण के अनन्तर जीवों का संग्रह मानते हैं। आवागमन नहीं मानते, पुनः सृष्टि सर्जन नाम किसी दिन में एक दम सब जाग उठेंगे, यह वचन निश्चय पूर्वक कहते हैं ॥३०॥

स्फुट वर्ण सुशब्द जल्पनं गल दंतोष्ठ मुखेन संभवेत् ।
अथ वेद ऋचां समुच्चया न शरीरः कथमेव संवदेत् ॥३१॥

भा० टी०—शुद्ध साफ अक्षरों द्वारा शब्दों का उच्चारण गल दंत ओष्ठ मुख द्वारा ही होता है। इसके अनन्तर वेद मन्त्रों का उच्चारण निराकार देव किस प्रकार कह सकता है, यह जैन प्रश्न है ॥३१॥

श्रुतिरेव जगद्विकस्वरी मुनिमान्याऽपि कृतिर्विनश्वरी ।
हठवाद समर्थनाऽर्थिभिर्गुरुगीर्वत् प्रतिपादिताः परैः ॥३२॥

भा० टी०—वेद ही जगत् में विस्तृत मुनि ऋषि द्वारा मान्य भी नाशमान है, नित्य नहीं। कोई ईश्वरकृत, व देवकृत व ऋषि मुनिकृत इत्यादि अनेक पक्ष हैं। परन्तु हठवादि मतों में गुरुवाणी समान औरों

ने मानी है। अपनी गुरुवाणी को सब मतवादी प्रमाण मानते हैं, एवं यह भी है ॥३२॥

स्वसभासु हठाद् वदावदा विवदन्ते परपक्ष तक्षणैः।
सदिदं सदद: प्रजल्पतां समयो याति निजोदरार्थिनाम् ॥३३॥

भा० टी०—अपनी २ सभाओं में हठ से बोलने वाले खण्डन मण्डन के विवाद में लगे रहते हैं। एक कहता है–यह सत्य है, दूसरा कहता है नहीं (यह सत्य है) अपने निर्वाह के कारण समय गुजरता है ॥३३॥

कचवर्द्धन मेवमुत्कचाः सहसा लुञ्चन मुण्डनादिकम्।
निज धर्म विधान लक्षणं कतिचित्पुण्यवशाः प्रचक्षते ॥३४॥

भा० टी० – कोई लोग रोम रक्षा तथा सारा लुंचन व मुण्डनादिक अपने धर्म का लक्षण पुण्य की कामना से कहते हैं ॥३४॥

मतजालमिषेण लुब्धकाः प्रणिबध्नन्ति नृपक्षिणोयुगे।
प्रभवन्तिस माप्नुवन्तिवा समयः किं कुरुते न कौतुकम् ॥३५॥

भा० टी०—लोभी गुरु शिकारीवत् मतों के जाल द्वारा इस समय नर रूपी पक्षियों को बांध रहे हैं। कोई मतवादी बढ़ रहे, कोई समाप्त हो रहे हैं। युग समय क्या कौतुक नहीं करता ॥३५॥

निजमान धनाप्तयेसदा रचयन्तो वहु सर्व लिंगिनः।
स्वजनेष्वरि वीजवापका नितरां भारतवर्ष शत्रवः ॥३६॥

भा० टी०—अपने मान धन प्राप्ति के निमित्त बहुत प्रकार के भेद रचते हुए अनेक प्रकार के रंग रूप विधि बनाकर गृह २ में बन्धु जनों में शत्रु भाव का बीज बोते हुये भारतवर्ष के शत्रु हुए जिससे

आपस में फूट पड़ जाने से हिन्दू जाति अति निर्बल हुई ॥३६॥

न सदा चरणा न सद्गिरो विषय त्याग विराग वंचिताः ।
भगवन् पदमाप्नुवन्ति ते किमु शिश्नोदर तृप्तिलीलया ॥३७॥

भा० टी०—जो सदाचारी नहीं सत्यवादी नहीं, विषयों के त्याग, विराग से रहित हैं। हे भगवान ! क्या शिश्न उदर की तृप्ति की चेष्टा से वह आपकी गति को प्राप्त करता है, कदापि नहीं ॥३७॥

शृणुयान्नकदाऽपि भक्तिभाग् मत कोलाहल मीदृशं बुधः ।
मितधीरमितस्य किं हरेर्महिमानं परिमातुमीश्वरः ॥३८॥

भा० टी०—भक्त सज्जन पुरुष नये बने हुए मतमतांतरों के विवाद कभी भी न सुने। अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ हरि की महिमा के पार पाने के समर्थ हो सकता है, किन्तु नहीं ॥३८॥

जगती जन जीवितोचितं शुभधर्माऽति परिष्कृतं मतं ।
अधिरोहति कोटिमुत्तमा मनुवेदं द्रुहिणेन वर्णितम् ॥३९॥

भा० टी०—भूमि के सर्व जीवों का कल्याणकारी शुभ धर्म कर्मों करके युक्त वेदों के अनुकूल मत को ब्रह्मा जी ने प्रकट किया है। यह सर्वश्रेष्ठ है। सर्व मत इसकी शाखा प्रशाखा बने हैं ॥३९॥

निगमैर्निरधारि निर्गुणं सगुणं वानपरे प्रमेनिरे ।
भवसर्ग विसर्ग शिल्पिनोप्यवतार ग्रहणं न दुष्करम् ॥४०॥

भा० टी०—वेदों ने ईश्वर को निर्गुण सगुण दोनों प्रकार का माना है। कोई सगुण भाव को नहीं प्रमाण कहते। चतुर्दश भवन ब्रह्मांड के कर्त्ता को भी अवतारों का ग्रहण करना कठिन नहीं। ब्रह्मणो

द्वे रूपे मूर्त्तं चा चामूर्त्तंच—यो ब्रह्माणं विदधाति पर्वं—इत्यादि मन्त्र अनेक हैं ॥४०॥

श्वसितं महतो न मानुषी स्मृतमात्रा विधिना सरस्वती।
स्तुतिमातनुते नमोऽधिकां किमतोऽस्तीश्वर सिद्धये प्रमा ॥४१॥

भा० टी०—महान् ब्रह्म का श्वास रूप मनुष्य करके न रची हुई और ब्रह्मा जी द्वारा स्मरण को प्राप्त वेदवाणी जिस ईश्वर को बार २ नमः नमः करके स्तुति करती है। नमः शंभवाय च मयोभवाय च इत्यादि। अतः ईश्वर सिद्धि में और अधिक प्रमाण की क्या आवश्यकता है—अस्य महतो भूतस्य श्वसितं यद् ऋग्वेदः यजुर्वेदः इत्यादि अपौरुषेयं वाक्यं वेदः, वेदस्मर्त्ता ततो ब्रह्मा। इति प्रमाण वाक्य हैं ॥४१॥

निगमाऽक्षर कामधेनवो बहु भावार्थ पयः प्रदा मताः।
प्रदुहन्ति यथारुचिक्रमादितरे तास्तदभीष्ट पुष्टये ॥४२॥

भा० टी०—वेदों के अक्षर कामधेनु के समान अनेक अर्थ रूपी दुग्ध युक्त हैं और मंतों वाले अपनी पुष्टि के कारण उनका इच्छानुसार अर्थ करके प्रमाण दोह लेते हैं और वेदवादी बने हैं ॥४२॥

स्वयमेव जगत्प्रकाशकः सकलोत्पादित विश्वपालकः।
नियमैर्नियतेर्नियामकः किमुभानुः शपथैर्विभाव्यते ॥४३॥

भा० टी०—ईश्वर स्वयं जगत् प्रकाश करने हारे उत्पन्न किये हुए सकल जगत् को पालन करने वाले नियम पूर्वक देशकाल की मर्यादा को प्रकट करने वाले प्रत्यक्ष हैं। सूर्य की सिद्धि में क्या प्रमाण आवश्यक है ॥४३॥

स्वत इन्दति सिद्धमत्तमः निखिलं साधयते नवं नवं ।
स्फुट दृष्ट पथानुयायिभि रनुमेयोन कथं स नायकः ॥४४॥

भा० टी०—स्वतः सिद्ध हो कर परमैश्वर्य को धारण करता है। नई २ अनेक लीला साधन करके प्रसिद्ध है। प्रत्यक्षवाद को मानने वाले वादियों ने उस स्वामी का अनुमान क्यों नहीं किया। इसमें अनुमान चिंतामणि अनेक ग्रंथ सिद्ध करते हैं ॥४४॥

निगमाऽनुमिति प्रमाणतः प्रतिसिद्धं नहि विश्वसन्ति ते ।
प्रसभंमत वज्र लेपिता व्यति जल्पंति वितंडयांकिताः ॥४५॥

भा० टी०—वेद, अनुमान परम्परा जनश्रुति द्वारा प्रसिद्ध ईश्वर पर विश्वास नहीं करते वह हठ से मत रूपी वज्र से लिप्त होकर वितंडवाद द्वारा अति विरुद्ध कहते हैं ॥४५॥

भगवन् भवदाज्ञये दृशः समयोधर्म विपर्ययः कलिः ।
अधितिष्ठति सार्वभौमतां किमुनः कल्कवचोविकल्पनैः ॥४६॥

भा० टी०—सब भगवन् आप की आज्ञा करके इस प्रकार विपरीत धर्मवाला कलि समय चक्रवर्ती होकर सर्वत्र राज्य करता है। हमारे जले बले बचनों की कल्पना से क्या हो सकता है ॥४६॥

जनता निखिलाऽस्त्युपद्रुता शरणं नो हरिकल्पपादपः ।
प्रभुपादपयः पिवान्नुमः दृढ विश्वास निविष्ट मानसान् ॥४७॥

भा० टी०—सब लोग पाप दुराचार में लगे हमारा तो भगवान् रूपी कल्पवृक्ष शरण है हम प्रभु के चरणामृत पान करने दृढ़ विश्वासी महापुरुषों की अति स्तुति करते हैं ॥४७॥

तपसाऽक्षपादोऽपि गौतमः कृतवान्न्याय निबन्ध संग्रहम् ।
प्रतिपक्षसमक्षवादिनः परिजित्याऽऽस्तिक मार्ग मानयत् ॥४८॥

भा० टी०—तपोवल से जिनके चरणों में नेत्र प्रकट थे ऐसे गौतम महामुनिः न्यायदर्शन नाम सूत्र ग्रन्थ के कर्त्ता हुये प्रतिवादि नास्तिक पुरुषों को जीत कर आस्तिक मार्ग में ले आये उनका उपकार ईश्वर सिद्धि में परम प्रमाण है ॥४८॥

कणभुङ्मुनि राप्ततार्किको विदधे सप्तपदार्थ शासनम् ।
परमाणुभिरीश्वराऽश्रयाज्जगदारम्भक वादसिद्धये ॥४६॥

भा० टी०—कणाद मुनि सत्यवादी यथार्थ तर्क शास्त्र के ज्ञाता सप्तपदार्थ रूप वैशेषिक शास्त्रकर्त्ता हुये उन्होंने परमाणु द्वारा ईश्वर के ही आश्रय से जगत् का आरम्भवाद सिद्ध किया और ईश्वर को कर्त्ता पुरुष सिद्ध किया ॥४६॥

कपिलोमुनिसिद्धसत्तमो गणयन् तत्वकला कलापकम् ।
प्रकृतेः पुरुषं व्यवेचयत् परिणामाऽर्थकसांख्यशिक्षणम् ॥५०

भा० टी०—मुनि सिद्धों में श्रेष्ठ कपिलदेव पच्चीस (२५) तत्वों को गिनते हुये परिणामवाद सांख्य शास्त्र की शिक्षा ही प्रकृति से पुरुष को पृथक विवेचन कर गये। यह ईश्वर सिद्धि है ॥५०॥

रुचिरं स्वविचार मादिशत् परमे ब्रह्मणि बादरायणः ।
मतसंघ शृगाल केसरी बहुधाऽभेदविवर्त्त बोधकः ॥५१॥

बादरायण श्री वेदव्यास ने ब्रह्म के विषय में सुन्दर विचार प्रकट किया। मत रूपी शृंगालों को मर्दन करने में सिंह समान और

बहुत प्रकार अभेद में विवर्त्तवाद का बोधन किया—सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि ॥५१॥

प्रततान महर्षि जैमिनिः रचनां द्वादश लक्षणीं शुभां ।
सुकृतैर्हृदयाऽर्थ शुद्धये प्रतिकृत्यं फलदातृ सिद्धये ॥५२॥

भा० टी०—महर्षि जैमिनी ने द्वादश लक्षणी नाम नाम मीमांसा शास्त्र रचा। पुण्यों शुभ कर्मों द्वारा हृदय के विषयों की शुद्धि करने का तथा कर्मानुसार फल प्रदाता परमेश्वर को सिद्ध करने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया ॥५२॥

भगवत्स्मरणे कृतांजलिर्मुनि संघ प्रवरः पतंजलिः ।
निरमाद्धठ योग पद्धतिं विहिताऽष्टांग समाधिसाधिनीम् ॥५३॥

भा० टी०—परमेश्वर के परम भक्त पतंजलि नाम महामुनि योग शास्त्र के कर्ता बने। अष्टांग समाधि द्वारा परमात्मा का दर्शन कराया। जो योगाभ्यास नाम से प्रसिद्ध है ॥५३॥

इतिहास पुराण संहिता अथ गीतोपनिषद्भि रन्विता ।
हरिकीर्त्तन कीर्त्तयस्तथा शुकवाल्मीकि कथा महाप्रथा ॥५४॥

भा० टी०—श्री महाभारत तथा अष्टादश पुराण उपनिषदों सहित श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, बाल्मीकि रामायण आदि महा प्रसिद्ध कथा हरियश सुनने सुनाने को जीवों के कल्याण निमित्त रची यह भी ऋषि मुनियों का महोपकार सज्जन कृतज्ञ भूलते नहीं, कृतघ्नों को क्या कहना है ॥५४॥

सकुमारिल शंकरादयो जगदीशोदयनादि सूरयः ।
पुनरुद्धधिरे पुरातनं जिनबुद्धाऽनुगतर्जितं मतम् ॥५५॥

भा० टी०—कुमारिल भट्ट के सहित भगवान् शंकराचार्य आदि महापुरुष तथा महा नैयायिक जगदीश भट्ट उदयनाचार्य आदि विद्वान्, जैन, बौद्ध विद्वानों करके निराहृत सत्य सनातन धर्म को पुनः उद्धार करते हुए उनकी कृपा से भारतवर्ष में वह धर्म जीवित रहा यह महान् उपकार है ॥५६॥

अमिताः सुमता स्तपोधनाः कृतयोगांग समाधि सिद्धयः ।
अनुभूत विचार शिक्षया जगुरेव स्वमतं सनातनम् ॥५७॥

भा० टी०—असंख्य महात्मा तपस्वी योगी पुरुष प्रसिद्ध सिद्ध और षट् शास्त्रवेत्ता भाष्यकार ग्रंथकार कविवर और ईश्वर को प्रत्यक्ष करने वाले साधु श्रेष्ठ और भक्तमाला ग्रन्थ में अनेक भक्त जन इसी धर्म को श्रेष्ठ सर्व शिरोमणि सब धर्मों का आदि पितारूप मान कर इसी में अपनी आयु व्यतीत कर गये। जो व्यर्थ वाद विवाद में पड़े उन्होंने कुछ लाभ नही उठाया, दोनोंको निन्दाका उपहार मिला।॥५७॥

पश्यत्युलूको न दिवाकराभां प्राक्कर्मयोगात् सहसादिवांधः ।
एतेन काहानि रहस्करस्य प्रताप संशोभितविश्वमूर्त्तेः ॥५८॥

भा० टी०—उलूक पक्षी सूर्य की शोभा को नहीं देखता। पूर्व कर्म के योग से अंधा होता है। इससे सूर्य की क्या हानि, उसने प्रताप से सर्व संसार को प्रकाशमान कर रक्खा है। एवं श्री वेद वर्णित सनातन धर्म सूर्य समान प्रकाशमान है जिनके प्रारब्ध में पाप दोष होता है उनको विश्वास नहीं ॥५८॥

कलिः स्वराज्येऽन्ययुगस्यनीतिं संवर्द्धितु नोत्सहते कदाऽपि ।
अतो जना धर्मविपर्ययेण भ्रश्यन्ति नश्यन्ति नविश्वसंति ।५६।

भा० टी०—कलियुग नाम राजा अपने राज्य में और युगों की

नीति, श्रम धर्म, कर्म आदि को बढ़ने नहीं देता। इसलिये यह पुरुष धर्मको त्यागकर भ्रष्ट-नष्ट होते हैं। पुनः भी विश्वास नहीं करते॥८६॥

पंजाब खण्डा दथवाऽतिवृष्ट्या दुर्भिक्षतो राजसुविग्रहाच्च।
प्रजासु संघर्षणतोऽतिपापात् वर्द्धिष्यमाणा विपदद्य पाहि ॥६०॥

भा० टी०—पंजाब के विभाग से अति वर्षा से, दुर्भिक्ष से, राजाओं में विरोध, प्रजा संघर्ष और अति पापों से इस समय विपदा प्रति दिन बढ़ने वाली हैं। हे नाथ ! रक्षा करो रक्षा करो ॥६०॥

शिखा गता किन्तु शिखावलेषु तत्तन्तुनाथस्य करेषु तन्तुम् ॥
तेषांस्वसंज्ञोक्तिषु लज्जितानां सृष्टिर्नवाना मथवा नराणाम्। ६१

भा० टी०—क्या इस समय जिनकी शिखा मोर पक्षियों के सिर पर चली गई और ब्रह्म सूत्र क्या जुलाहे के हाथ में पहुँचा। अपनी संज्ञा ब्राह्मण क्षत्रिय हिन्दू कहने पर लाज आती है अथवा यह नरों की नवीन सृष्टि है —श्लेषालङ्कार ॥६१॥

कृते चतुर्थां शतया कलिश्च कलौचतुर्थां शतया कृतं स्यात्।
अन्योन्य सांसर्गिक भावजन्या क्वचिन्महासज्जन साधुलब्धिः ६२

भा० टी०—सतयुग में भी चतुर्थ कलिवास करता है। कलि में चौथा अंश सत्य युग वास है परस्पर युगों के मिलान से उत्पन्न होते। कहीं कोई सज्जन साधु महात्मा मिलते हैं, साधवोनैवसर्वत्र चन्दनं न वने वने इत्यादि ॥६२॥

सन्तो धरायां न हि चेद्वसन्तः कुतोभवेद् ब्रह्मविचारधारा।
सत्स्वेव भूभृत्सु निदर्शनं हि वहन्ति गंगा यमुनादि धाराः ॥६३

भा० टी०—यदि भूमि पर ईश्वर ज्ञाता महापुरुष श्री वशिष्ठ, श्री

शंकराचार्य, श्री मधुसूदन सरस्वती आदि न होते तब ब्रह्म विचार के प्रवाह कैसे बहते। दृष्टांत है पर्वतों के होते ही गंगा, यमुना आदि धारा प्रकट होती हैं ।।६३।।

सर्वायुषान्धीकृतचेतनानां सन्मार्ग संदर्शन दिव्य चक्षुः।
सत्साधु संगो नयनाऽऽमयेषु यष्टिग्रहाद्दृष्टि धरात् विनाकिम् ।।

भा० टी०—सारी आयु जिनकी बुद्धि अंधी सी हो गई है। उनको शुभ मार्ग के दिखाने में दिव्य दृष्टि दाता उत्तम महात्मा का संग ही समर्थ है। नेत्र के रोग से अन्धे पुरुषों को लाठी उठाने वाले नेत्रधारी पुरुष से बिना क्या उपाय होता है और कोई उपाय नहीं ।।६४।।

अध्यात्मविद्या परिपूतवाचा माशासु संयान्ति न किं यशांसि।
प्रांचीं यदा शोभयते सुधांशुः तदैव लोके जन रञ्जनाय ।।६५

भा० टी०—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महा शुद्ध पवित्र भाषण करने वाले विद्वानों का क्या यश सर्वत्र दिशाओं में विस्तार नहीं पाता। अपितु पाता है चन्द्रमा। पूर्वादि दिशा को जब शोभा देता है तब सर्वत्र जीवों को प्रसन्नता होती है ।।६५

यो वीतरागो नियतो निरागाः स एव कैवल्य पदानुरागः।
स्तुतिर्मता ब्रह्मविदोश्च तुल्या तद्ब्रह्मविद्दर्शन मप्यलभ्यम् ।।६६

भा० टी०—जो राग द्वेष से रहित नियमधारी निर्दोष हैं वे महात्मा ही मुक्ति पद के प्रेमी अधिकारी होते हैं। ब्रह्म और वेदवेत्ता पुरुषों की स्तुति समान फलदायी है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता गुरु रूप सत्यपुरुष का दर्शन भी दुर्लभ है ।।६६।।

विदां गरीयान् महतां महीयान्
प्रेम्णाम्रदीयान् वचसा पटीयान् ।
श्रेयान् गुणौघै र्व्यसनैर्दवीयान्
सुदुर्लभो योगि वरोहि विद्वान् ॥६७॥

भा० टी०—विद्वानों में गुरु समान और बड़ों में महान् पुरुष, प्रेम करके, कोमल स्वभाव उपदेश करके, चतुर गुणों करके, अति उत्तम व्यसनों करके, दूर रहने वाला महा योगी ब्रह्मवेत्ता का दर्शन दुर्लभ होता है ॥६७॥

हंसाः क्वचित्सन्ति वसन्तु तत्र न कुत्र चिद्दृष्टचराः कलाभः ।
मुक्ताप्रियाः क्षीरपिबा वनस्था दृश्यान संन्मान समन्तरेण । ६८

भा० टी०—हंस पक्षी कहीं है तो वहां वास करे किसी स्थान में वह देखे नहीं गये तो लाभ कहां ? जो हंस मोती भक्षण करने वाले पानी से दूध पृथक् करके पान करने वाले जल समीप वास करते हुये श्रेष्ठ मानस सरोवर से बिना और स्थान में नहीं देखे गये ।

यद् वा दूसरा अर्थ—हंस नाम परम हंस महात्मा गंगोत्तरी आदि पर्वतों पर हैं वहां ही रहे, लोकों को और स्थानों में देखे नहीं गये तो लाभ कहां है ? जिन्होंने सब प्रिय वस्तु त्यागी है । फलाहारी दुग्ध पान करने वाले वनवासी है अपने मन की पवित्रता से बिना वह दर्शन नहीं देते । साधु परीक्षा भी अति कठिन है ॥६८॥

क्वा मदेवः क्व नु नामदेव एतादृशः सत्समयो व्यतीतः ।
आडम्बरो लम्बतरोऽद्य दंभः हे देव लीला तवदिष्ट पुष्ट्यै ।६९

भा० टी०—वामदेव जो उपनिषदों में गर्भों का ज्ञान प्रकट कर रहे हैं। वह कहाँ और नामदेव भक्त कहां ? जिन्होंने कई बार अपने चर्म चक्षु से साकार भगवान् का दर्शन किया। भक्त माला में देखें। यह समय बड़े विस्तार वाला दम्भ ही है। हे देव ! आप की यह लीला समय को पुष्ट वा दृढ़ करने की हो रही है किसी का दोष नहीं यह ऐसा शुभ समय गुजर गया है ॥६६॥

अद्वैकमत्यं रसनोपभोगे परिग्रहोपग्रह संग्रहे च।
प्रियंवदानां किल वाचिधर्मः संमत्सु गाथा रुचिवर्द्धनानाम् ॥७०

भा० टी०—इस समय में मत मतान्तर अनेक प्रकार के विस्तृत है। परन्तु अच्छा खाना पीना सुन्दर वस्त्र धारण करने में सब का एक मत है अनेक प्रकार के मकान सामान के संग्रह में सब लगे हैं सभाओं में कथा द्वारा श्रोताओं को प्रसन्न करने वाले प्रिय वादी उपदेशकों का धर्म केवल वाणी में वास करता है हृदय में नहीं ॥७०॥

शौरे तवाऽसेचककनकं स्वरूपं तूर्णं सकृन्मन्नयनेपुनातु।
स्थिरा प्रतिज्ञा शरणागतस्य कृपैव मां शर्म निधे पिपर्तु ॥७१

भा० टी०—हे कृष्ण महाराज ! आपका अति सुन्दर, अद्भुत रूप शीघ्र एक बार हमारे नेत्रों को पवित्र करें आपकी शरण गत की दृढ़ प्रतिज्ञा है। हे सुख के धाम यदि हम अपवित्र अयोग्य हैं, तदपि आपकी कृपा ही हमारी आशा को पूर्ण करने वाली अवश्य हों ॥७१॥

तलेपुनागा स्त्रिदिवे निलिम्पा नरा धरायां युगपद् भजन्ति।
कोलाहलेभूमि भृतां स्तुतीना मेतां कथं श्रोष्यसिदुर्गतानाम् ।७२

भा० टी०—सात पातालों में नाग जाति के देवगण और स्वर्ग

में कोटिशः देवगण पृथ्वी में राजा प्रजा आदि अनेक समुदाय आपको प्रातःकाल सायं काल भज रहे हैं। इन बड़े बड़े देवगण राजगण कृत स्तुति के शोर मच जाने पर इन गरीबों की इस स्तुति को किस प्रकार सुनोगे। यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, तथापि धनवानों का मान आपकी दृष्टि में अधिक प्रतीत होता है।

"गरीब को खुदा की मार" यह उर्दू का कवि ठीक कहता है ॥७२॥

एतादृशो हंस वरोनलब्धो योदर्शयेन्मानुष हंसमेव।
स्वयं च निर्वर्णनद स्त्वमेधि भवेदमोघा जन जन्मयात्रा ॥७३॥

भा० टी०—कोई इस प्रकार के ब्रह्मवेत्ता नहीं मिले जो अपने हृदय में वास करने वाले हंस का दर्शन कराते अथवा तुम आप ही अपना दर्शन दान करने वाले हो तब हमारी जन्म की यात्रा सफल होवे है। समाधि द्वारा आत्मा का दर्शन हृदय में करना निर्गुण ईश्वर ज्ञान है। दूसरा भगवान् का दर्शन चर्म चक्षु द्वारा होना सगुण ईश्वर प्राप्ति है। दो प्रकार करके ही मनुष्य का जन्म सफल होवे है ॥७३॥

किंचित्कस्य चिदेव नोपकुरुते कुत्राऽपि कश्चिज्जनः
एतादृक् समयो मयाऽति विषमः सद्योऽनुवोभूयते।
जातिप्रेम गतं गताविनयता सत्यं च दूरेगतम्।
संप्रत्यत्र दयोदयोपकृतयः सन्तोहि सन्तोषिणः ॥७४॥

भा० टी०—कोई पुरुष किसी पुरुष का भी किसी स्थान में व काल में भी किंचिन्मात्र उपकार नहीं करता। इस प्रकार का अति भयंकर समय तत्काल हम लोगों ने स्वयं अतिशय करके अनुभव

किया है जाति का परस्पर प्रेम नाश हो चुका। नम्रता भी गई अभिमान आ गया। देश की सचाई कहीं दूर चली गई। झूठ कपट का व्यवहार सर्वत्र चलित हुआ। आज कल इस देश में तृष्णा के उदय होने से उपकार करने वाले स्वयं सन्तोषी सत्पुरुष नहीं हैं कोई दयालु और परोपकारी स्वयं सन्तोषी महापुरुष रह गये। यह प्रत्यक्ष सिद्ध व्यवहार हैं ॥७४॥

स्पर्द्धन्तां मणिभिस्तु काच मणयो निर्माण यन्त्रोद्भवाः
रत्नागार पयोनिधि प्रकटितैर्वा सानुमत्सानुजैः।
नित्यं कर्बु र वर्ण दीप्ति बलत स्तेषां न काचित्क्षतिः।
तत्तद्भाव परीक्षणे सति महा मूल्ये कते वा कते ॥७५॥

भा० टी०—कारखानों में उत्पन्न अर्थात् बनावटी काँच की मणियां शुद्ध सच्ची मणियों से ईर्ष्या द्वेष की भावना करें परन्तु शुद्ध मणि रत्नाकर समुद्र से प्रकट होती है वा पर्वतों की चट्टानों से निकलती है, और कांच मणि रंग-बिरंगे चमकीले रूप से सामना करती है। इससे शुद्ध मणियों की कोई हानि नहीं क्योंकि जिस समय उन मणियों के भाव की परीक्षा होती है और महामूल्य प्रकट होता है, तब वह कहां जो कौड़ियों पर बिकने वाली, कहां अति मूल्य वाली राजाओं के मुकुटों में लगी हुई सिर पर वास करती है।

इस श्लोक का भावार्थ व्यंग रीति से विचारें। सच्चे साधु प्रेमी साधु, विद्वान् प्रकाण्ड और लंबशाटी विद्वान्, गुणी, अवगुणी, धनी-निर्धन इत्यादि यथामति विचार लें।

रावलपिंडी पुरी वास्तव्य मुह्याल वंश भूषण श्री पण्डित कुलपति विष्णुदत्ताना मात्मजेन अभिनव भर्तृहरि कविरत्न.
श्री तेजभानु शर्म्मणा कृतायां स्तुतिमुक्तावल्यां
प्रथमा लता समाप्ता ॥

स्तुति मुक्तावली

द्वितीयलता

प्रति रूपैक रूपाय रूपाऽरोप निरूपणात् ।
अरूपाय सरूपाय विरूपाय नमोनमः ॥१॥

भा० टी०—रूप के आरोप से प्रति रूप में एक रूप धारण करने वाले और रूप से रहित और रूप के सहित और विविध रूप धारण करने वाले हे भगवान् आपको बार-बार नमस्कार हो ॥१॥

घनमच्चिदनन्त रूपिणं परमानन्द मयं निरामयं ।
भवमर्जन पालनाऽप्ययं शिपिविष्टं समुपाश्रयेश्रियै ॥२॥

भा० टी०—पूर्ण सत्य चेतन अनन्त रूप परमानन्द निर्विकार और जगदुत्पत्ति पालन प्रलय कारक महेश्वर को श्री प्राप्ति के निमित्त सम्यक् आश्रय कर रहे हैं ॥२॥

क्वतदद्भुतगौरवार्णवः क्वमदीयो लघुभारतीप्लवः ।
तदशक्य समुद्यमेऽपिमेन मनोधृष्टमिदं हृणीयते ॥३॥

भा० टी०—ईश्वर की महिमा का समुद्र कहां । हमारा छोटा सा कविता रूपी जहाज कहां । स्तुति की शक्ति के न होने पर भी यह हमारा मन ढीठ लज्जा को नहीं प्राप्त होता । अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ की महिमा किस प्रकार जाने ॥३॥

निगमैश्चतुराननादयो नमहिम्नो यदि पारमागताः ।
कथमल्पविदो न दुष्करा नियमान् पंचयमानकुर्वतः ॥४॥

भा० टी०—वेदों द्वारा ब्रह्मादि देवता, यदि ईश्वर की महिमा के पार को प्राप्त नहीं हुए तो किस प्रकार स्तुति कठिन नहीं है ; अपितु कठिन ही है ॥४॥

समयो न कृतोपमोवपु र्नहिशीतोष्णसहं चिरायुषा ।
गरिमा कथमेव वर्ण्यते नवलं योग समाधि सांख्यजम् ॥५॥

भा० टी०—समय सतयुग के समान नहीं और शरीर दीर्घायु न होने कर के सर्दी गर्मी नहीं सह सकता है, और योगाभ्यास तथा ब्रह्म ज्ञान का भी बल नहीं तब किस प्रकार प्रभु की महिमा का वर्णन करें, अति दुर्लभ है ॥५॥

प्रणतिं सुकरांतु मन्महे विविधां काल विदेश भेदतः ।
कतमाभगवत्प्रसादिनी स्वयमेव स्वभुवाऽनुभूयते ॥६॥

भा० टी०—हम तो प्रणाम करना ही सुखेला मानते हैं, परन्तु वह भी कालदेश भेद से अनेक प्रकार की है यथा कोई दंडवत् कोई हाथ जोड़, कोई नीचा सिर, कोई जानु स्पर्श, कोई यवनादि नीचा, ऊंचा व बंदगी हाथ से व टोपी उतारनी ईसाई आदि प्रणाम के भेद हैं। इनमें भगवान् को प्रसन्न करने वाली कौन सी है। यह स्वयं प्रकट करने वाले आप ही जानते हैं ॥६॥

भवतोभुवि युष्मदस्मदो भवतो विश्व विहार कर्तृणी ।
इयदद्भुत शक्तिशालिन श्चरणाब्जौ शरणं शरीरिणाम् ॥७॥

भा० टी०—हे प्रभो ! आप से ही संसार का व्यवहार चलाने वाली तुम हम व तेरा मेरा अनेक रूप होते हैं। इतनी आश्चर्य शक्ति के धारण करने वाले के दो चरण कमल ही देह धारी मात्र के शरण आश्रय हैं ॥७॥

पतितः पतितो भवाद्दशात् सदनुक्रोश पयः पयोनिधेः ।
जगदुद्भव ताप तापितः परिवांछामि सतींमतिं पितः ॥८॥

भा० टी०—हे पिता ! हम पतित संसार के तापों से तपाये हुए शुभ दया के क्षीर सागर, आप जैसे स्वामी से पवित्र बुद्धि की प्राप्ति की इच्छा करते हैं अर्थात् जीवन मुक्ति सुख चाहते हैं । ८॥

शमथं दमथं प्रयच्छ मे ममतां नाशय जन्मजालजाम् ।
अपचायित पाद सद्गुणैः परिपूर्णास्तु कृतार्थताऽर्थना ॥९॥

भा० टी०—हे पूजितपाद शम और दम दो और जन्म जन्म में होने वाली ममता को दूर करो । शुभ गुणों द्वारा कृतकृत्यता की प्रार्थना पूर्ण हो ॥९॥

प्रियतां सगुणेश्वरे परां दृढ़ भक्ति प्रवदन्ति तद्विदः ।
अथनिर्गुण योग धारणा द्वयमेतन्न हरेर्दयां विना ॥१०॥

भा० टी०—सगुण परमेश्वर में परम प्रेम को भक्त जन प्रेमा भक्ति कहते हैं । इसके अनन्तर निर्गुण ब्रह्म में योग की । धारणा यह दोनों ही हरि कृपा के विना दुर्लभ हैं ॥१०॥

वरिवस्यितनाम सत्फलः दयतां चेतन पारिजातकः ।
दयनीय गणाग्र वर्तिनोद्रुत मादीनव दीनताऽर्दनः ॥११॥

भा० टी०—पवित्र नामों की सुफल युक्त आप चेतन कल्प वृक्ष हमारे पर दया करें । हम दया योग्य पुरुषों में अग्रगामी है शीघ्र दुःख दीनता को दूर करने वाले हो ॥११॥

भुवनेश्वर राजराज ते गृहभिक्षुर्नियमेन केवलम् ।
सक्षुदित्वर कीर्ति धारिणं परियाचे नकदाऽपि पामरम् ॥१२॥

भा० टी०—हे त्रिलोकीनाथ ! हे महाराज ! हम केवल नियम से आपके गृह के भिक्षु हैं। विशाल कीर्ति धारण वाले से कुछ मांगता हूँ पामर कंदर्य जनों से कभी नहीं मांगता ।।१२।।

हृदये न बलं कलेवरे न च संबंधि समुच्चयोचितम् ।
विभवस्य बलं न निर्बलो नरसी श्रेष्ठि वरात्त्वदर्थये ।।१३।।

भा० टी०—हृदय में तथा शरीर में बल नहीं, बन्धु समुदाय का योग्य बल नहीं, धन का बल नहीं। निर्बल होकर नरसी भक्त के बड़े सेठ आप से सब कुछ मांगता हूँ ।।१३।।

अलसो विरसो मलीमसः सहसा कर्तुमकर्त्तु मक्षमः ।
सुखसागर शान्तिवारिधे विसृजेतः सुखशान्ति विप्रुषम् ।।१४।।

भा० टी०— हम आलसी भक्ति रस से हीन मलीन करने न करने को असमर्थ हे सुख के सागर ! हे शांति के समुद्र हमारी तरफ भी सुख शांति की बूंदें बरसाएं, हमें सुख शांति मिले ।।१४।।

विततां विजयामहे कथं तवमायां परिमोहिनीं गुरो ।
सुगमा सरणिः प्रदर्श्यतां भ्रम मोहादि कलंक हारिणी ।।१५।।

हे परम गुरु रूप तेरी विस्तृत जगत् को मोहने वाली माया को हम किस प्रकार जीतें। कोई सुखेन मार्ग दिखावें जिससे भ्रम मोह आदि कलंक नाश हो जावे ।।१५।।

क्वचिदस्तु सुवर्ण वर्षणं तदकस्मात्तुनिधेः समुद्गमः ।
न समीहति मग्न मानसः प्रति पित्सामि सुखेन जीवनम् ।।१६

भा० टी०—कहीं स्वर्ण की वर्षा हो और कहीं अचानक निधि

प्रकट हो हम संग्रह की इच्छा नहीं करते। केवल शांति, सुख की प्राप्ति की इच्छा करते हैं ॥१६॥

नयनस्रवदश्रु धारया हृदयोत्कंपन विह्वलात्मना।

विहिताकृति रप्रहर्षिणी कतमातेऽस्तु जनार्दन प्रिया ॥१७॥

नयनों से बहती अश्रु धारा से अथवा हृदय व्याकुलता से यत्न पूर्वक रची हुई यह स्तुति आप को हर्ष नहीं देती। हे जनार्दन कौन और स्तुति आपको हर्षदायी होगी ॥१७॥

परिकर्षति मृत्यवे जरा गदवर्गोऽपि कलेवरं वरं।

गृहकार्य परम्परा इतो मम सांदृष्टिक मस्तुसत्वरं ॥१८॥

भा० टी०—जरा अवस्था मृत्यु अवस्था के लिये खींच रही है रोग समूह सुन्दर शरीर को खींच रहा है, गृह कामनाओं का समूह इधर खींचता है। हे नाथ! मुझे शीघ्र प्रत्यक्ष लाभ हो, उपकार हो ॥१८

तनया अनया युगव्रता गृहिणी बांधव विप्रकृष्टता।

परिजीन निरादृतस्य मे परिपाता परमः जगत् पिता ॥१६॥

भा० टी०—इस समय पुत्र स्वतन्त्र है, स्त्री युग के अनुसार है, बन्धु वर्ग दूर बिछुड़े हुए हैं, वृद्ध और निरादर को प्राप्त हमारी रक्षा करने वाले परम पिता आप हैं ॥१६॥

इदमायु रतीव दुर्लभं विषयाशा प्रसर प्रमोदिना।

समनायि मया गृहेप्सया विगतार्था प्रवरा द्विजन्मता ॥२०॥

भा० टी०—विषयों की आशा के विस्तार में प्रसन्न होकर सारी

दुर्लभ आयु व्यतीत कर दी है। ब्राह्मण जन्म भक्ति मुक्ति के विना व्यर्थ गुजारा है. कृपया उद्धार करें ॥२०॥

स्खलितं निज धर्म कर्मतो यदि पद्माधव मामुपेक्षसे ।
भवते जनदीनवंधवे क उपालंभमिमं प्रकाशयेत् ॥२१॥

भा० टी०—हे लक्ष्मीनाथ ! अपने धर्म कर्म से गिरे हुए मुझ को यदि आप त्याग रहे हो। भक्त और दीन पुरुषों के आप वन्धु हैं, इस त्याग के उपालंभ में अर्थात् नहौरा को आप के प्रति कौन प्रकट करेगा प्रभु होने से ॥२१॥

तनयानवजानतस्स्वका नव जानन्ति न ज्ञातु पालकाः ।
अपराध गणेन केनमे सहसा शंकर न प्रसीदसि ॥२२॥

भा०टी०–अपराध करने वाले पुत्रों का पिता निरादर नहीं करते, प्रत्युत क्षमा करते हैं। किस अपराध समूह करके हे शंकर मेरे पर प्रसन्न नहीं होते ॥२२॥

क्वचिदद्भुत पक्षपातिनी भवदीयाऽस्ति दया दयानिधे।
भुवनानि समं प्रपश्यतो नय कक्षु नगति विबुध्यते ॥२३॥

हे दयानिधे ! आपकी दया किसी स्थान पर बहुत पक्षपात करने वाली है। सर्व ब्रह्मांड को सम दृष्टि से देखने वाले न्यायकारी आपकी गति लीला हम लोगों से नहीं जानी जाती ॥२३॥

सकले निज जीवितावधौ कृत दुष्कृत्य कुपूय चेतसां ।
क्षणतः स्मरणेन शोधनं मनुजानां न किमेतदद्भुतम् ॥२४॥

भा० टी०—सारी आपकी आयु में किये पापों करके नीच हृदय

वाले पुरुषों को क्षणमात्र स्मरण करने से पवित्र मुक्त करना यह आश्चर्य क्या नहीं, अपितु आश्चर्य है ॥२४॥

करिणे करुणा समर्पणे न विलम्बोऽल्पमलम्भि यत्त्वया।
जगदीश तदीय रक्षया पतितोद्धारक युक्तमेवतत् ॥२५॥

भा० टी०—जगत् के स्वामी गजेन्द्र निमित्त दया के देने में आप ने किंचित् मात्र भी देरी नहीं लगाई। उसकी रक्षा की इच्छा करने से युक्त होकर हे पतितों के उद्धार करने वाले युक्त योग्य कथा है ॥२५॥

निज भक्त जनोपरक्षणे जगदाधार, वसत्युदारता।
नतया सुरपादपादयः समतां साधयितुं चकासिरे ॥२६॥

भा० टी०—हे जगत् आधार अपने भक्तों की शीघ्र रक्षा करने में जो उदारता आप में वास करती हैं। कल्पवृक्ष, कामधेनु चिंतामणि आदि उस उदारता की समानता नहीं कर सकते ॥२६॥

अथवा कृतदुर्विपाकतो नविकासं समुपैतिमादृशे।
इतिचेद्वद सर्व शक्तिमन्न सहायो निपतामि पादयोः ॥२७॥

भा० टी०—हमारे भाग्य के बिगड़ने पर मेरे जैसे मनुष्य पर दया प्रकट नहीं होती यदि यह बात है तो कहो। हे सर्व शक्तिमान् में निराश्रय आपके चरणों पर पड़ रहा हूँ अवश्य दया करें ॥२७॥

नियतिक्रम संक्रमांकितां परिहर्तुं मनुजाः किमीशते।
दितिजाऽदितिजादयोऽपिते विवशाश्चेद्दधतेऽनुकूलताम् ॥२८॥

भा० टी०—मर्यादा के क्रम से बन्धी हुई आपकी नियत अथवा भवितव्यता को दूर करने को मनुष्य किस प्रकार समर्थ होते हैं। यदि

दैत्य और देवता आदि भी बेवश हो आपके अधीन हो कर चल रहे हैं, जो महाबली हैं ॥२८॥

विषया विषमा बिषोपमा यदिमे प्राणभृता मरातयः ।
परलोक सुखौघ तस्कराः प्रसभं व्याकुलयन्ति मानवम् ॥२९॥

भा० टी०—विषय विष के समान बली है जो यह जनों के परम रूप परलोक के सुख समूह के लूटने वाले शीघ्र व्याकुल कर देते हैं वश में कर लेते हैं ॥२९॥

विषयान् परि हृत्ययेतिरे स्वमनोहत्य विशाल दृष्टयः ।
वरसिद्धिभिरैश्वरीं कलां प्रकटी चक्रुरति प्रहर्षणीम् ॥३०॥

भा० टी०—दूरदर्शी महात्मा विषयों को त्याग कर और अपने मन को मार कर यत्न करते रहे और अनेक प्रकार की सिद्धि द्वारा अति आश्चर्य रूप ईश्वर कलाओं को प्रकट कर गये ॥३०॥

मदनस्यतु पञ्च बाणता वलतो नेतुमभीक्ष्णमुत्पथम् ।
कतमं न जनं प्रविध्यति विरला प्राणिषु वीतरागता ॥३१॥

भा० टी०—कामदेव के पंच बाण किस मनुष्य को अपने बल से अतिशय कुमार्ग में ले जाने के लिये नहीं बेध करते, किन्तु सब को बेध रहे हैं। राग द्वेष का त्याग किसी में ही रह गया होगा ॥३१॥

तदनन्तर मन्त रुद्गता वसु लिप्सा नृषु या प्रतीयते ।
अवमान निदानया मुहुर्नतया विस्तृतया विशीर्यते ॥३२॥

भा० टी०—काम के अनन्तर लोभ अन्दर प्रकट होने वाली धन लाभ की इच्छा जीवों में प्रतीत होती है। बारम्बार निरादर कराने वाली और वृद्धि को प्राप्त हुई दूर नहीं होती, लोभ बली है ॥३२

अपि विश्रुत मान धारिणां, निवसन्त्या हृदये दुराशया ।
व्यसनोपचयो निपात्यते क्वराकस्य जनस्य धीरता ॥ ३३॥

भा० टी०—प्रसिद्ध मानधारी सज्जन साधु पुरुष के हृदय में वास करने वाली दुष्ट वासना द्वारा अनेक व्यसन दोष उत्पन्न कर दिये हैं तुच्छ पुरुप गृहस्थी जनों को धीरता कहां मुक्ति दुर्लभ है ॥३३॥

स्तुतये सततं समुद्यतं पथिलक्ष्मीर्निरुणद्धि चिन्तया ।
नतयाऽस्ति विनाऽपि निर्वृति गृंहिणां नित्यवसुव्ययेषिणाम् ।३४

भा० टी०—पूजा पाठ निमित्त उद्यम करने वाले को मार्ग में लक्ष्मी नाम धन की आशा चिन्ता करके रोक लेती है उसके बिना गृहस्थ पुरुपों को सुख नहीं। उनका नित्य धन का खर्च है दरिद्रता विघ्न रूप है ॥३४॥

कतिचिद्भुवि तृष्ण जोनराः सदुपायैर्धनधान्यगृध्नव ः
समयंतु नयन्ति प्राकृताः शमसंतोष धरास्तुदुर्लभाः ॥३५॥

भा० टी०—काई लोग तृष्णा के वश अनेक उपायों करके धन अन्न की इच्छा करते जन प्राकृत समय गुजारते हैं। शम और संतोष धारण कर्ता जन अति दुलभ हैं ॥३५॥

उपदेश कृतां हृदो वलाद् विषयाऽऽसक्ति रुषबुंधोपमा ।
मरुताऽक्षगवाक्ष जन्मना ज्वलिता तापयते निरन्तरम् ॥३६॥

उपदेशकों के हृदयों को अग्नि समान विषयासक्ति बल से इन्द्रिय रूपी झरोखों से उत्पन्न वायु द्वारा प्रचण्ड होकर सदा तपाती तंग करती है ॥३६॥

ममता युतयाऽप्यहंतया मदमात्सर्य मुखाः विलेशयाः ।
जनिता जन शर्म्म घातुका विचरन्तीह शरीर कानने ॥३७॥

भा० टी०—ममता सहित अहंभाव से उत्पन्न होने वाले मद मात्सर्य आदि अनेक सर्प शरीर रूपी बन में लोकों के सुख के नाश करने वाले विशेष करके भ्रमण करते हैं ॥३७॥

जठरं पिठरो नपूर्यते प्रति घस्रं रस पेय जग्धिभिः ।
अतएव कुटुम्ब तृप्तये कुरुते कः कलुषं न पुष्कलम् ॥३८॥

भा० टी०—प्रतिदिन षड्रस, दुग्ध वा भोजनों करके उदर थाली पेट का बर्त्तन भरा नहीं जाता । इसलिये पुत्र कलत्र आदि के पालन निमित्त कौन पुरुष अनेक प्रकार के पाप, उपद्रव नहीं करता (सब करते हैं) ॥३८॥

भवदाप्ति रतोऽस्ति दुर्लभा परमात्मन् विषयौघ विघ्निता ।
अथ कोटि जनेषु कश्चन प्रियदृष्ट्या पदमाप्तु मर्हति ॥३९॥

भा० टी०—हे परमात्म देव ! आप की प्राप्ति इस लिये दुर्लभ है कि अनेक प्रकार के विषय विकार इसमें विघ्न रूप हैं । इसके अनन्त अनन्त मनुष्यों में कोई आप की प्रेम दृष्टि करके मुक्ति धाम को प्राप्त करने योग्य होता है ॥३९॥

यदकामहतस्य चेतसि प्रकटाऽऽनन्द पयोधि मज्जनम् ।
लवमात्र मितस्ततोनत न्निरतानां गृहमार्ग मार्गणे ॥४०॥

भा० टी०—हे नाथ ! जो निष्काम पुरुष के हृदय में प्रकट हुये आनन्द समुद्र में मज्जन का सुख है वह इधर-उधर गृह के काम धन्धे में लगे हुए नरों को किंचिन्मात्र भी नहीं होता परन्तु मोह त्याग अति कठिन है ।

जगतो गुरवो द्विजन्मनां मुखजा राज सभा समादृता ।
दधते जनताकृतां घृणां कल हंसान् वक पंक्तिरीर्ष्यति ॥४१॥

भा० टी०--जगत् के गुरु द्विजों में मुख्य ब्राह्मण राज सभाओं में आदर को प्राप्त ये लोकों द्वारा कृत घृणा को धारण कर रहे हैं। हंसों के प्रति बगलों का समूह भी ईर्ष्या करता है ॥४ ॥

तपसाऽऽरुरुहुर्द्विजोत्तमा वसुधादेव पदं त्रयीविदः ।
अधुना वरजीवि कोज्झिता नतया संस्कृत विद्ययानताः ॥४२॥

भा० टी०—जो ब्राह्मण तपोबल से भूमि के देव थे, वेदों के ज्ञाता थे। इस समय श्रेष्ठ जीविका रहित हुए जो विद्या राष्ट्रभाषा के न होने के कारण नत है, उससे वह भी नत हैं ॥४२॥

भवता प्रति पालनं गवां किमु गोपाल तदद्य विस्मृतम् ।
यद मूर्वदतां प्रकम्पना विषहन्ते विपदोऽनिवारिताः ॥४३॥

भा० टी०—हे गोबिन्द गोपाल आपने गो जाति की रक्षा इस समय भुलादी है, जो यह गौएँ कहने वालों को कंपायमान करती और दूर न होने वाली विपदा सहार रही है ॥४३॥

अपि माणवकेषु गोषु वा सह वासात् परिचर्य्ययाथवा ।
युगपर्य्यय काल भेदतः किमु तत्प्रेम तिरोहितं हितम् ॥४४॥

भा० टी०—छोटे बछड़े और गौओं में भी प्रेम साथ वास और सेवा से संग्रह किया था। युग के बदलने पर, समय के दूर होने पर क्या वह परम प्रेम भूल गया है ॥४४॥

भण गोगण भूसुर प्रभो करुणाऽऽगार विपन्न वान्धवः ।
बलिना कलिना पराजितान् स्वजनान् पालयसेन सांप्रतम् ॥४५॥

भा० टी०—कहो हे गो ब्राह्मण के प्रेमी प्रभु ! हे दयानिधान आप दुःखी जनों के बन्धु हैं। बलवान् कलियुग के हारे हुए अपने

मित्रों की अब पालना नहीं करते, क्या कारण है ॥४५॥

विषयैर्दलिता द्विजब्रुवा कुमहापातक पंचकांकिताः ।
तवभूरि भराय सन्तिनो किमसन्तः सततं वसुन्धरे ॥४६॥

भा० टी०—हे पृथ्वी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नीच द्विज और अति पंच महापातकों से कलंकित यह नीच पुरुष क्या आपको अति भार रूप नहीं है, भार अवश्य हैं ॥४६॥

अति दुष्कृत भार विह्वला भवनेतार महोन, या च से ।
अथवाऽसि जड़ा जड़ाऽऽश्रया कलि चांडाल विभुक्तमंडला ॥४७

भा० टी०—अति पापों के भार से व्याकुल होकर संसार के स्वामी ले प्रार्थना नहीं करती अथवा तू जड़ है जलों का आश्रय है। युग में चाण्डालों ने तेरे मण्डल को भोगा है। चाण्डाल संग से तेरी बुद्धि वैसी हो गई हैं पुराण कथा में तू गो रूप धार बैकुण्ठ गई थी ॥४७॥

वसुधे गृहयालु रर्थनां प्रकृती शोऽवततार योमुहुः ।
हृदयालु रसौदयालवात् प्रकटः सर्वजगन्ति पास्यति ॥४८॥

भा० टी०—हे भारत माता तेरी प्रार्थना को अंगीकार कर प्रकृति के स्वामी बार २ अवतार धारण करते रहे। वह महान् हृदय वाले दया वश होकर सर्व जगत् की रक्षा करेंगे तेरे यत्न से जीव मात्र का कल्याण हो सकता है ॥४८॥

क्वचिदुद्यत कार्य पूर्त्तये भुवितिर्य ग्जनि माप्तवानसि ।
त्वमनाथ सनाथ नाथमा मधुनाकिंमनसा नुनाधसे ॥४९॥

भा० टी०—हे प्रभो ! किसी समय संसार के आवश्यक कार्य

को पूर्ण करने को तिर्यग् जन्म मत्स्य कच्छवादिक रूप को प्राप्त हुए हो। हे अनाथों के समूह के स्वामी ! अब मुझे क्यों नहीं आशीर्वाद करते जिससे परमानन्द की प्राप्ति हो ॥४६॥

जननं भरणं जरामृतिर्विपदो हन्त गदास्तथाऽऽधयः ।
इति दस्युगणैर्नियन्त्रितं तरसा मोचय पापमोचनः ॥५०॥

भा० टी०—जन्म, पालन, जरा, मृत्यु, विपदा, रोग और मन की चिन्ता आदि शत्रुगणों करके बांधे हुए को छुड़ावें तुम पापों से छुड़ाने वाले हो ॥५०॥

हृदयाऽवसथोऽपि सर्वविच् चतुरैर्दुश्चरितैर्नलभ्यते ।
ऋजवोऽत्यनुरक्ति रज्जुभिर्हृदि बध्नन्ति विशुद्ध मन्दिरे ॥५१॥

भा० टी०—हृदय वासी सर्वज्ञ भगवान चंचल पुरुषों की चंचलता से नहीं मिलता। और साधु सज्जन पुरुष अति प्रेमा रूप भक्ति रूपी रज्जु से पवित्र स्थान हृदय में बांध लेते हैं (चतुराई न चतुर्भुज पाईए)—भोले भाव मिले रघुराया इति ॥५१॥

स्वकलेवर चर्म पोषणं न जहातीह सदा(रि रक्षिषा,)।
क्वजपः क्वतपः क्वसाधनं भविनां मोहमयं हि जीवनम् ॥५२॥

भा० टी०—अपने शरीर की चर्म पुष्टि को सदा रक्षा की इच्छा इस जगत् में नहीं त्यागती अर्थात् सब शरीर का पालन पोषण करते हैं। हे नाथ ! जप कहां और तप कहां कहां साधन हो जीवों की सारी आयु मोह में ही प्रधानता करके लगी रहती है ॥५२॥

व्यसनानि घनानि संसृता वपसंगेन कलंकयंति, चेत् ।
कव किल्विष पुंजरंजितं जन संशोधक शोधनक्षमः ॥५३॥

भा० टी०—संसार में अनेक प्रकार के व्यसन नीच संग से नरों को अगर कलंकी करते हैं हम विचारते हैं। हे जीवां को शुद्ध करने वाले पापों के रंग से रंगे हुए जीवों को शुद्ध करने में समर्थ है—आप ही समर्थ हैं ॥५३॥

जगदुद्भव कर्म संग्रहे कृतिमात्राऽवहितेन चेतसा ।
यदि तेऽनव काशता हरे, किमुमादृच्च मनुष्य रक्षणम् ॥५४॥

भा० टी०—हे हरे ! जगत् उत्पत्ति के महान कार्य संग्रह में यदि सावधान होकर कुछ भी समझ में विश्राम नहीं करते। तब मेरे जैसे मनुष्य की रक्षा का ध्यान कब होगा ॥५४॥

यदि शान्त नशान्त मान्तरं स्वगृह व्यापृति पूरको न, राः ।
करुणा मसृणां दृशं न वा कुरुषे किं नर जन्म गौरवम् ॥५५॥

भा० टी०—हे शान्त स्वरूप ! हमारा हृदय विषय विकारों से शान्त नहीं है अपने गृह कार्य को पूर्ण करने योग्य धन भी नहीं। यदि आपकी दया युक्ति दृष्टि भी नहीं तब मनुष्य जन्म का क्या लाभ हुआ ॥५५॥

प्रथमे प्रथमे प्रयेतिरे भजतां चातितितिक्षतां नृणाम् ।
भव संभव भीति भञ्जनो जप पाठैक परानवाधुना ॥५६॥

भा० टी०—पहले समय में भजन करने वाले महातितिक्षा करने वालों में मुख्य महात्मा तपस्या में यत्न करते रहे ! हे प्रभो ! तुम संसार की अनेक प्रकार की विपदा को नाश करने वाले हो। अब समय में केवल जप पाठ में तत्पर हमारी रक्षा करें हम ज्ञान ध्यान से शून्य हैं ॥५६॥

क्रकचैर्मृ ति रंग कर्त्तनं विषभुक्तिर्गिरितो निपातनम् ।
स्मरतां वणिजामिवार्थिनां नहि सत्यापन मीदृशं वरम् ॥५७॥

भा० टी०—प्रथम समय में काशी तीर्थ पर कलवत्तर से मरणां रावणादिवत् शिर छेद वाजिव्हा छेद आदि। तप्त तेल में हस्तक्षेप मीरावत् विषभक्षण प्रह्लादवत् पर्वत से गिरना व श्री शंकर त्। यदि वेदा: सत्यं कहकर वृक्ष से गिरना इत्यादि सत्य परीक्षा जो कामना के बंधे बणियों के समान भजन पाठ करने वालों की परीक्षा भी श्रेष्ठ नहीं है (समयोगत:)॥५७॥

न विरक्त्यनुरक्ति युङ्मनः शिवलालायितमेव वस्तुषु ।
चपलं च पलायनेरतं तवपादाऽब्जमधुव्रतः कथम् ॥५८॥

भा० टी०—हे शिव ! सुख स्वरूप महादेव विराग और भक्ति से रहित मन सुन्दर वस्तुओं में लालची चंचल और और पल मात्र भी स्थिर नहीं। आपके चरण रूपी कमलों का रस ग्रहण करने वाला भ्रमर किस प्रकार होगा॥५८॥

क्लिशितं भव दुस्तराऽर्णवात् प्रसभं तारय मांतु कद्वदम् ।
प्रतिपालय लालयाऽऽत्मजं प्रभविष्णो किलनाथवानहम् ॥५९॥

भा० टी०—हे प्रभावशाली प्रभो ! संसार महासमुद्र से दुःखी मुझको तारो। मैं तो कठोर वचन कहने वाला हूं, पुत्र जान कर पालो, लाड़ दो, आपके आधीन दास हूँ॥५९॥

तरि राव्रुडिता पयोनिधौ तरिवाहैः किमनु प्रयोजनम् ।
यदि जीवति नास्त्यनुग्रहः कृपया किं समयाऽतिलंघने ॥६०॥

भा० टी०—नौका समुद्र में डूब जाए, पीछे मल्ला हो करके

क्या लाभ है। यदि जीते जोव पर कृपा नहीं। समय के गुजरने पर कृपा करके क्या लाभ है ॥६०॥

परमेश्वर, मानसो तृषा प्रतिदिष्टं सहसा विजृंभते।
परिपूरय दूरयाथतां दशमीस्थौन हि काम कारिणौ॥६१॥

भा० टी०—हे नाथ! मन की तृष्णा प्रति पल बढ़ रही है, उसको पूर्ण करो अथवा दूर करो। ज्ञानवान् अथवा वृद्ध पुरुष किसी कार्य के योग्य नहीं होते ॥६१॥

फलिना तव निस्पृहे स्पृहा गृह कामास्तु वयं न निस्स्पृहाः।
नभवत्स दृशः, फलेग्रहिः कुरुतादत्र फलोपबृंहितम् ॥६२॥

भा० टी०—हे नाथ आपकी इच्छा निष्काम पुरुषों को फलदायी है। हम गृहस्थी कामना से रहित नहीं है आपके समान फलदायी और नहीं, आप भक्त जनों के ऊपर फल वृद्धि करें ॥६२॥

वसुवंश परंपराऽर्जितं यवनैर्जाल्मतमैः विलुण्ठितम्।
दरदुर्दशया समाकुलो भवभट्टारक राजमाश्रितः ॥६३॥

भा० टी०—पंजाब के विभाग में शरणार्थी जनों का सर्व धन पुरातन संग्रह किया हुआ नीच म्लेच्छों ने लूट लिया है। इस दुःख दुर्दशा से व्याकुल हो कर संसार के महाराज भगवान को, आश्रय करते हैं ॥६३॥

हृदयाऽऽमय विह्वलान्तरो भ्रममोहादि गणै रुपद्रुतः।
करुणौषध सेवनेन ते स्थिर चित्तः समये स्मराम्यहम् ॥६४॥

भा० टी०—हृदय के रोग से व्याकुल भ्रम मोह आदि उपद्रवों करके युक्त आपकी दया रूपी औषध के सेवन से स्थिर चित्त होकर अंत तक स्मरण करता हूं ॥६४॥

विपदं हर संपरायजां परमात्मन्नतिभीति पूरिताम् ।
पठतस्तव नामनिर्मलं समये कार्य विधिर्हि शोभते ॥६५॥

भा० टी०—हे परमात्मा देव आपके पवित्र नाम भजने वाले की अति भयदायी परलोक के भय को दूर करो। समय में ही सब कार्य शोभा पाते हैं ॥६५॥

विकृता नर बुद्धि वृत्तयः विकृतं भोजन वेष धारणम् ।
विकृतं पठनं च पाठनं कथमास्तां तवपादयोर्मतिः ॥६६॥

भा० टी०—मनुष्यों की बुद्धि की वृत्तियां बिगड़ गईं, खाना पीना वेष भी बदल गया और पढ़ना-पढ़ाना भी बिगड़ गया तो किस प्रकार आपके चरणों में बुद्धि स्थिर हो ॥६६॥

कलिकल्मष वर्षणे न तज्जगदाप्लावितमेव संततम् ।
अपितत्र निमज्जनोन्मुखा न करालम्बन तो विनो द्धृताः ॥६७॥

भा० टी०—कलियुग के पापों की वर्षा करके वह जगत् निरन्तर पूर्ण भर गया है। उसमें डूबने को तैयार भी नर आपके हाथ के आश्रय से बिना उद्धार को प्राप्त नहीं होंगे ॥६७॥

भगवन् परवानहं भवान् परमेशानतया यथेष्टकृत् ।
वरसूरत दत्तचेतसा श्रवणीयं करुणारसेरितम् ॥६८॥

भा० टी०—हे भगवान ! हम पराधीन हैं, आप परम स्वामी होने करके यथा रुचि काय करते हैं. हे श्रेष्ठ दया युक्त करुणा रस युक्त मेरे वचनों को सावधान होकर सुनने योग्य जाने ॥६८॥

नहि चेद् हृदयंगमंवच स्तदपि क्षम्यमिदं त्वमीशिता ।
क्षुधितास्तृ षिताश्च दुर्गताःप्रलपन्त्येव महर्निशं पितः ॥६९॥

भा० टी०—यदि स्तुति रूप वचन ननु, नच आदि शब्दों से आपको प्रसन्न नहीं करता तथा पिता योग्य हैं, आप मालक पालक हैं। हे पिता! भूखे प्यासे दरिद्री, दुःखी जन इसी प्रकार प्रलाप करते हैं। परम पिता के आगे नां करें तो और कौन सुने ॥६६॥

नतयो यदुनन्दनायते नुतयो राघव संज्ञकायते।
स्तुतयो बलि कर्षणा यते नतयो भार्गव संज्ञकायते ॥७०॥

तिमये कमठाय धृष्टये नरसिंहाय च बुद्धरूपिणे।
अथ कल्किवराय भाविने शतशो वास्तु सहस्र शोनतिः ॥७१॥

भा० टी०—श्रीकृष्ण महाराज को नमस्कार, श्रीरामचन्द्र जी को स्तुति, वचन, बलि को बांधने वालों को स्तुतियां, परशुराम जी को नमस्कार, मत्स्यावतार कच्छपवराह नरसिंह, बुद्ध और आगे होने वाले कलंकी अवतार इनके आगे सौ बार व हजार बार नमस्कार नमस्कार हो ॥७०-७१॥

चरितानि चराचराऽत्मनः परिपूतानि च तीर्थ पाद ते।
श्रवणात्स्मरणाच्च कीर्त्तनात् भुविकोऽघौघहराणिमापयेत् ७२

भा० टी०—हे तीर्थपाद! तेरे चरणों में तीर्थ वास करते हैं। तुम चर अचर रूप अर्थात् सर्व रूप हो आपके चरित्र महा पवित्र हैं। सुनने से, पढ़ने से, कीर्तन करने से अनेक प्रकार के पापों को नाश करने वाले हैं। पृथ्वी में कौन मनुष्य पाप करे व गिने, आप अनन्त पुण्य के भण्डार हो ॥७२॥

नियमेन सदा प्रसन्नधीः समधीते प्रवरामिमां स्तुतिम्।
हृदिवांछति यद् यदेवतद् परिपूर्णं च सतां महीयते ॥७३॥

भा० टी०—जो पुरुष नियम पूर्वक प्रसन्न होकर इस स्तुति को पढ़ता है हृदय में जिस जिस वस्तु की इच्छा करता है पूर्ण होती है। और अच्छे जनों में मान के योग्य होता है ॥७३॥

विश्वं स्वीयमनो विनोदन कृते किं निर्मितं हे प्रभो।
जीवानामुत कर्म संग्रह बलाद् वा दुःख पूर्णमुधा ॥
यद्वेदृक् स्थिर मेव कर्तृ रहितं ते संशयानाजगुः।
भ्रान्त्यापन्न मसद् वसिष्ठ वचनं त्वं तत्त्वविन्नापरः ॥७४॥

भा० टी०—हे प्रभो! क्या संसार को अपने मन के प्रसन्न करने के निमित्त बनाया है अथवा विचार होता है। जीवों के कृत कर्मों के संग्रह बल से दुःख से पूर्ण व्यर्थ ही प्रतीत होता है। अथवा वह शंकावादी जगत् को कर्त्ता से रहित इसी प्रकार स्थिर कहते थे। दीर्घ भ्रम और है ही नहीं, वशिष्ठ महाराज कह गये हैं। हे नाथ! आप ही इस तत्त्व को जानने वाले हो और कोई नहीं ॥७४॥

वंशोवंश भवा भयंकर बने कारुक्रियासंस्कृता।
प्राप्ता दुर्लभदर्शनंतु भजतां श्रीकृष्ण वक्त्रांबुजं।
सर्वं प्राणिगणं प्रसह्य विवशीचक्रे व्रजस्थं स्वरैः।
पुण्यं वेत्ति तरोर्नरोऽपिकतमोयद् योगिनां दुष्करं ॥७५॥

भा० टी०—वंशी वांस से पैदा हुई निर्जन वन में कारीगरों ने बनाई हुई भजन करने वालों को जिसका दर्शन है। ऐसे उस श्रीकृष्ण महाराज के मुखारविन्द को प्राप्त हुई। व्रजवासी जीवमात्र गोगण, गोपाल, गोपी तथा पशु पक्षियों को भी स्वरों के बल से बेवश अर्थात् मोहित करती थी। कौन मनुष्य बांस वृक्ष के पुण्य को जानता है जो योगि जनों को दुर्लभ है ॥७५॥

ब्रह्मांडाऽधिष्ठातः कूटस्थाऽधोक्षज हे हृषीकेश ।
पुण्यश्लोकाधीश्वर दीनं त्रायस्व संसारात् ॥७६॥

भा० टी०—हे जगत् के स्वामी सर्वव्यापी मानस प्रत्यक्ष इन्द्रियों के पालक पुण्य श्लोकों में श्रेष्ठ दीन मेरी संसार से रक्षा करे ॥७६॥

इति अभिनवभर्तृहरि कविरत्न श्री तेजभानु विरचिता स्तुति
मुक्तावली द्वितीयालता समाप्तः ।

———

स्तुति मुक्तावली

तृतीया लता

प्रक्षिप्तो व्यमनाऽर्णवे कृतवशाद् विश्वम्भरेण त्वया ।
कष्टावर्त्त सहस्र दुस्तरतमे दुस्सह्य संवेदने ।
जीवामि श्वसिमि प्ररोदिमिमुहुस्ताम्यामि जोषं स्थितः ।
तस्मादुद्धर दुर्धरात्सपदिमां गोवर्द्धनोद्धारक ।

भा० टी०—यह श्लोक पंजाब देश के विभाजन में शरणार्थी जनों की अवस्था वर्णन में लिखा है। हे विश्व पालक तुमने कर्मों के अधीन दुःख समुद्र में गिराया कैसा समुद्र है अनेक कष्टों के चक्रों से तरा नहीं जाता, इसकी पीड़ा सहारी भी नहीं जाती, जीते हैं, कभी ऊंचे स्वर भी लेते हैं, तंग आ गये हैं, चुप रहते हैं हे गोवर्धन के उद्धार करने वाले मुझे शीघ्र ही इस दीघ दुःख से निकालो, रक्षा करो ॥१॥

गेहस्थायि कुटुम्ब पालन विधि ग्रस्तान् गृहस्थान् पुनः ।
दुर्दैवोदित तापशाप निवहात्संशीर्णदेहेन्द्रियान् ।
स्व व्यापार विहार साधन धनाऽभावातिदीनात्मनः ।
ज्ञातुं त्वंयतसे न विश्व जनकश्चेत् कोऽपरः पालकः ॥२॥

भा० टी०—अपने घरों में रहते बाल-बच्चों की पालन में असमर्थ और नीच प्रारब्धवश ताप रूपी शाप के समूह में निर्बल हो

गई। देह इन्द्रियां जिनकी और अपने व्यवहार के पूर्ण करने के लिये धन के न होने से अति दरिद्री जनों को तुम संसार के पिता यदि रक्षा का यत्न नहीं करते और दूसरा पालन करने वाला कौन होगा। नकोऽपि इत्यर्थः ॥२॥

जीर्णातनूस्तदनुजीर्ण तरेन्द्रियाणि
विद्या विबोधविधुरा बधिरेव बुद्धिः ।
बंधुः सर्किं हितकरो न करोति सेवां
गोपायमां करुणया करुणानिधान ॥३॥

भा० टी०- हे नाथ ! शरीर वृद्ध और साथ इन्द्रियां भी वृद्ध बुद्धि बोध से हीन वधिर समान हो रही हैं। हितकारी होकर जो सेवा नहीं करता, व. क्या बन्धु है। हे दया समुद्र अपनी दया से हमारी रक्षा करो ॥३॥

विश्वप्रभो प्रभुतयाऽद्भुतया फलंकिं
चेन्मादृशेनसफला सफला बहुत्र ।
ब्रह्मांड खंडगत सज्जन दुर्जनाली
रक्षाविचक्षण विलक्षण नाम कीर्ते ॥४॥

भा० टी०—हे विश्व के प्रभु आपके अद्भुत ऐश्वर्य का क्या फल है जो अनेक स्थानों में फलदायी भी हमारे जैसे दास में प्रकट नहीं हुई। आप सर्व ससार के अच्छे व बुरे जनों के समूहों की रक्षा के प्रसिद्ध विद्वान और आश्चर्य रूप नाम की महिमा वाले आप हमारी रक्षा अवश्य करें ॥४॥

प्रसत्तये तेऽस्ति पथां पथः को न वेद वेदांग वदोऽपिवेद ।

वहुप्रजल्पन्ति मत प्रभेदा दनल्प संकल्प विकल्पजल्पाः ॥५॥

भा० टी०—हे नाथ आप को प्रसन्न करने का कौन मार्ग है, यह वेद शास्त्रों का वक्ता भी नहीं जानता। मत मतांतरों के कर्ता अनेक प्रकार की कल्पनाओं से अपने मत को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन कहते हैं ॥५॥

स्मरन्ति नो नाम कदापि केचित्
सदा दुराचार जुषो मदान्धाः।
दीर्घायुषां भोक्तृ भुजां च मुख्या
दृष्टा मनुष्या वहवोहि चित्रम् ॥६॥

भा० टी० - हे प्रभु! कोई जन कभी भी तेरे नाम को नहीं जपते, सदा दुराचारी और मद करके अन्धे हैं। वह दीर्घ आयु अनेक भोग भागी जनों में मुख्य मनुष्य देखे गये हैं, यह आश्चर्य कर्म फल है ॥६॥

भजन्ति येत्वां भव कृन्नरावराः
सदासदाचार परायणाः परे।
विपद्युता दीर्घ गदाश्च दुर्गताः
क्वचिद्विभोऽवाग्विषयस्त्वदाशयः ॥७॥

भा० टी०—हे जगत् के कर्त्ता जो श्रेष्ठ पुरुष सदा सदाचारी हैं. आपका भजन करते हैं। वह विपदा करके युक्त महारोगी और दरिद्री कहीं होते हैं, हे विभो! आपका अभिप्राय समझ नहीं आता।

यथा वलं बाल बलं विलापः तथाबलं नः कविता प्रलापः।
आकर्ण्य माता त्वरितं समेति त्वं सर्ववित्सर्वगतश्च मौनी ॥८

भा० टी०—यथा शक्ति रोदन करना बालकों का बल है। उसी प्रकार कविता रूपी प्रलाप ही बल है। बालक का रोदन सुन कर माता शीघ्र समीप आती है। तुम सर्वज्ञ और सर्व पूर्ण होकर भी मौन धारण करते हो।

प्रजापतिं कर्म फल प्रदाने दैवं स्विदन्ये ग्रह चक्र कालम्।
स्वभाव मन्येऽन्ध परंपरांवा प्रव्यूदिरे स्वल्प विदोहि जीवाः ॥९

भा० टी०—लोकों को कर्मों के फल देने में ब्रह्मा जी हैं कोई प्रारब्ध मानते हैं कोई ग्रहों का चक्र का काल कोई स्वभाव-वादी कोई अन्धपरम्परा भी कहते हैं विवाद करते हैं। जीव अल्पज्ञ ही हैं ॥९॥

भक्तोऽधुना प्रेम रसानुरक्तो न सूरतुल्यः तुलसी समोवा।
अतः स्वमुद्भावयितुं न वष्टि भवान् भवान्मुक्ति सुख प्रदायी ॥१०

भा० टी०—इस समय अति प्रेमी भक्त सूरदास तुलसीदास के समान भक्त जन नहीं है। इस कारण आप अपने अवतार को नहीं ग्रहण करते हैं। संसार से मुक्ति सुख के दाता आप ही हैं ॥१०॥

उच्चावचं तृष्णाग शक्तशीलः
स्वप्ने विहाराकुल चेतनोऽपि।
किंचित् क्वचित् नाम जपाऽक्षमालां
निषेवमाणः किमुपेक्षमाणः ॥११॥

भा० टी०—अनेक प्रकार की तृष्णा करके युक्त और प्रिय वादी स्वभाव से रहित स्वप्न में संसारी कामना में बुद्धि वाला भी कभी कुछ जप, पाठ, कीर्तन करने वाला आप करके क्या त्यागा हुआ है अतः दया दृष्टि नहीं करते ॥११॥

समर्थको विश्व नियामकस्त्वं रक्षन् विपन्नान् चरण प्रपन्नान्
चतुर्दिशं स्थास्नु यशश्चिचोपन् स्वदासरक्षाऽतिभरं गृहाण॥१२

भा० टी०- वरों के दाता संसार की मर्यादा के चलाने वाले दुःखी शरण आए हुए की रक्षा करते सारे जगत् में अपने स्थिर यश को संग्रह करते अपने दास की रक्षा के भार को ग्रहण करो अवश्य रक्षा करें ॥१२॥

वनीयकस्ते समपत्रविष्णु मुहुर्मुहुः प्रार्थित वंचनेन।
धृष्णग् विवक्षामि न किंचिदीश मंदाक्षता मौनविधिर्हिधत्ते ।१३

भा० टी०—हे ईश तुम्हारे द्वार का भिखारी बार बार प्रार्थना के न पूर्ण होने से लज्जायुक्त और ढीठ भी कुछ कहने को इच्छा नही करता जिस लिये लज्जा जन को मौन करातीं है ॥१३॥

त्वं पालकः पालयितव्य पुंसां यद्वास्वकर्मानुफलं प्रदाता।
इत्थं वयं न्यूनधियो न विद्मः शास्त्रैरतोऽवर्णि समः समेषां १४

भा० टी०—तुम पालन करने योग्य पुरुषों के पालक अथवा अपने कर्मों के अनुसार फलों के दाता हो हम छोटी बुद्धि वाले नहीं जानते। इसलिये आप का शास्त्रों ने सब लोकों को समान देखना वर्णन किया है ॥१४॥

रत्नाकरे वास गृहे शयालोः
पत्युःश्रियाः त्वत्पद सेविकायाः।
ना कर्णनीया किमु कर्कशागीः
कर्दमिनो दुर्गति दुर्भाग्यः ॥१५॥

भा० टी०—रत्नाकर क्षीर सागर में शयन करने वाले और आपके चरणों की सेवाकारी लक्ष्मी के स्वामी को दुःखी दरिद्री गृहस्थों की विलाप शब्द प्रार्थना क्या सुनने योग्य नहीं अपितु सुनने योग्य है ।।१५।।

काले महार्घेऽन्ननियंत्रणेऽपि निर्वासितानां च गृहाश्रमाणाम् ।
क्रन्दन्ति नित्यं यदि धर्मदाराः किंप्रस्मृतं पालक नायकेन ।।१६

भा० टी०—काल में बड़ी मँहगाई है अन्न पर कण्ट्रोल भी है। पंजाब के निकासे हुए गृहस्थ पुरुषों की धर्म पत्नियां यदि नित्य कुरलाती हैं। क्या पालकों के नायक आपको भूला हुआ है ।१६

त्वत्सेविका सेवन दक्षचित्ताः प्रमाद विभ्रान्त दशो महेभ्याः ।
वांछन्तियद्यच्चमनोवचोभ्यांसंपूर्यंतेतत्क्षणतः प्रयत्नात् ।।१७।।

भा० टी०—हे हरे आप की दासी लक्ष्मी की सेवा में लगे अति प्रमादी महाधनी मन वाणी द्वारा जो जो इच्छा करते हैं वह सब काम क्षण मात्र से यत्न पूर्वक सम्यक् पूर्ण किया जाता है ।।१७।।

नारायण ध्यान परोहि कश्चित्
लक्ष्मी समादान पराःसमस्ताः ।
पंक्तिः प्रसिद्धा किल शब्दशास्त्रे
स्याद्ध्यर्थ वान्वै समुदाय एव ।।१८।।

भा० टी०—कोई विरला नर नारायण के ध्यान में तत्पर होता है धन ग्रहण में सब लगे हैं शब्द शास्त्र में यह पंक्ति प्रसिद्ध है समुदाय ही अर्थवान् है एक देश अनर्थक है आप ही सर्वज्ञ हैं। श्री व्यास जी का वचन है—' वित्तमेव कलौ पुंसां वर्ण आचार गुणोदयः ।।१८।।

ऐदंयुगीनो धन मेव वन्धुः संकल्पनाऽनोकहमूलबीजम् ।
विना न काचिद् प्रभवेत् फलाशा निरंतरं तापयते दुराशा ।१६

भा० टी०—इस युग में होने वाला परम वन्धु धन ही है। मनोरथ रूपी वृक्ष के मूल का बीज है जिसके बिना कोई फल की आशा नहीं दुःख रूप आशा निरन्तर तक रही है जिनको ५ हजार रुपये मासिक लाभ हो रहा है उन लोकों और देशों में अब सतयुग आरम्भ हुआ है ॥१६॥

दरिद्रतां स्वीकुरुते विरक्तः साऽनुग्रहस्ते परमस्तदर्थम् ।
वयं सरक्तास्तु जिजीविषामः पुरातनीनीति रियंनिषेध्या ॥२०॥

भा० टी०—विरक्त साधु भक्त जन दरिद्रता अर्थात् गरीबी को अंगीकार करते हैं जैसे उद्दालक मुनि अथवा रंका बंका आदि। वह दरिद्रता आपका परम अनुग्रह है उनके लिये हम तो धन के सहित जीने की करते हैं, यह पुराना कानून बन्द करें ॥२०॥

असूक्षणं मानवता मसूषणं
दयोदयो मानवता महोदयः ।
परोपकारः सुहृदां प्रभाकरः
कृताऽऽकृतिः पुण्यकृतांकृता कृतिः ॥२१॥

भा० टी०—मानधारी पुरुषों का अनादर प्राणनाश के समान है। दया प्रकट होना मनुष्य जन्म की शोभा है। परोपकार मित्रों में प्रकाशकारी है। पुण्य वालों का कर्तव्य सत्ययुग कर्मों के सदृश हैं ॥२१॥

फलं प्रयच्छन् स्वकृतानुकूलं ततोऽधिकं किंचिदिहाऽददानः ।
संकल्प संपादित विश्वबन्धो, उदारता ते विशदा पुरारे ॥२२॥

भा० टी०—हे संकल्प मात्र से उत्पन्न किए संसार के वन्धु जीवों को अपने कर्म अनुसार फ़ल देते हुये और उससे कुछ भी अधिक नहीं देते हैं। हे मुरारी यह भी आप की उदारता प्रसिद्ध है ॥२२॥

कर्माणि चेल्लान्ति फलं जनेभ्यः
त्वंस्थूल लक्ष्यो यदि हे प्रतीक्ष्य
तान्येव नम्यानि सदानराणां
भरण्यभुग् लाभ पथानुयायी ॥२३॥

भा० टी०—हे पूजनीय तुम महादानी हो यदि अपने किये कर्म ही जीवों को फल देते हैं तब वह कर्म ही नमस्कार पूजा के योग्य है। नौकर सेवक अपने लाभ के मार्ग का आधीन होता है स्वार्थ ही मुख्य है ॥२३॥

किं कर्म तद्यद् विशिनष्टि दुःखं ततोऽपरं तद् सुखमेव वष्टि।
कदा कृतं केनतुजन्मनि क्व प्रभुः प्रभुस्त्वंसदसद् विवेक्तुम् ॥२४

भा० टी०—वह कर्म कौन है जो दुःख को अधिक कर्ता है उससे भिन्न कर्म क्या है जो सुख की इच्छा देता है वह कर्म किस समय किस जन्म में किसने किया है। यह बात प्रभु आप जानते है। सच झूठ के निर्णय में समर्थ हैं जीव क्या जाने ॥२४॥

भक्ष्यंक्षुधायां सलिलं तृषायां साक्षात्कृतं कर्म फलोपपत्यै।
नकेनचिद्दृष्टमदृष्टसंज्ञं तर्कोऽपिमूकस्त्विह चक्रिताधीः ॥२५॥

भा० टी०—कोई कर्म प्रत्यक्ष फलदायी है। जैसे भूख में अन्न और तृषा में जल है। परन्तु अदृष्ट नाम कर्म को किसी ने नहीं

देखा। इस विषय में युक्ति भी नहीं कह सकती और बुद्धि भी आश्चर्य होती है ॥२५॥

नृणांस्व जन्मान्तर कर्मणांहि गतिं गभीरांभगवन्न वोचः।
ज्योतिर्विदुक्तौ क्वचिदन्यथात्वे श्रद्धा समस्तान्नवशीकरोति ।२६

भा० टी०—हे भगवन् आपने जीवों के अपने अनेक जन्मों के कर्मों की कथा श्री गीता में स्वयं गम्भीर अर्थात् अज्ञेय कह दी है। दैवज्ञ ज्योतिषी कुछ कुछ जन्मान्तर कर्मों की कथा कहते हैं परन्तु कहीं, और ही फलादेश होता है। शास्त्र सत्य है परन्तु ज्योतिषी विद्वान् की न्यूनता है अतः कर्मों के फल जानने में श्रद्धा सब को अपने वश नहीं कर सकती 'गहनाकर्मणोगतिः' सर्वज्ञ आप ही जानें ॥२६॥

खिन्ते मनश्चेत्कथ मात्मवित्त्वं
शोकं तरीतुं न परोऽस्त्युपायः।
प्रह्वी भवान्यंघ्रि सरोज युग्मे
प्रवेक कल्याण ददाऽनुकम्पा ॥२७॥

भा० टी०—यदि मनुष्य के मन में दुःख होता है तब आत्म वेत्ता होना कहां, और शोक के तरने का और उपाय नहीं है (तरति शोक मात्मवित्) यह श्रुत वाक्य है हम आपके चरणों में नम्र होते हैं आपकी कृपा सब प्रकार कल्याण देती हो हमें शोक से पार करो ॥२७॥

भक्तोद्धृतिः किं पुरुपुण्य पुंजात् अजामिले सा समले प्रवृत्ता।
तदेक नारोदित नाम शक्तिः नेत श्रुती रोचन कारणीय ॥२८

भा० टी०—भक्तों का उद्धार क्या बहुत पुण्यों के संचय से होता है तब मलीन अजामिल में वह द्धार हुआ एक बार कहे नाम की शक्ति है यह फल की महिमा रुचि बढ़ाने के सदृश है ॥२८॥

समुद्धृता वारवधूः क्षणेन कीराय ते नामगणं पठन्ती ।
इत्यादि गाथाः कथमेनतात संदेह पंके न निमज्जयन्ति ॥२६॥

भा० टी०—हे पिता क्षण में वैश्या का उद्धार किया जो पक्षी निमित्ततेरे नाम को पढ़ती है इस प्रकार की कथा किस प्रकार शंकाओं में नहीं गिरा देती यतःयोगियों को भी गति दुर्लभ है ॥२६॥

गतानुक्ति पंचदशी शताब्दी भक्तोच्चया यत्रतु धर्मशाले ।
कर्मंदिनः प्रापु रनंतधाम परंकपाटः पिहितोऽधुनाकिं ॥३०॥

भा० टी०—हे पिता हम विचार करते सोचते हुए पंचदश १५ सदीं क्या गुजर गई उस समय अनेक भक्त भक्त माला में लिखे हुए अपने धर्म स्थानों में सन्यास त्याग मार्ग को प्राप्त होकर मुक्ति धाम को प्राप्त हुए परन्तु क्या उस धाम का किवाड़ बन्द कर दिया है अतः वहां जाना दुलेभ है और इस समय में भक्ति ज्ञान विराग का होना भी अति कठिन है ॥३०॥

भास्वान् भास्वर मूर्ति विश्वनयनो यः सर्व काल क्रमः ।
ब्रह्मप्राप्ति पथश्च वेदविनुतोऽप्यातंकपंकाऽयहः ।
मन्दः पंगुरभूद् विकोण वसतिः शत्रुश्च तस्यात्मजः ।
को जानाति विधेस्तवाऽति रचनां दुर्वार संस्कारिणीम् ॥३१॥

भा० टी० सूर्यदेव प्रकाश मूर्त्ति जगत् का नेत्र रूप जो दिन रात से लेकर युगों तक सारे काल क्रम के करने हारा सूर्य मंडल का भेद कर योगी जन जाते हैं अतः ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग और वेदों में

स्तुति को प्राप्त कर रोगभय पापादिकों को नाश करता है उसका पुत्र मंदनाम शनि पिंगला और कोण वासी सूर्य का परम शत्रु हुआ सर्व देव रूप आपकी रचना को कौन जानता है जो अवश्य भावी और टल नहीं सकती। (स आप: स प्रजापति:) इति श्रुते: ॥३१॥

स्रष्टाऽऽरोहति हंसमेव विनतासूनुं च लक्ष्मी पतिः
श्रीकंठो वृष माखुमेव गणपो मेषं तथा हव्यवाट्।
पित्री शो महिषं स्मरस्तु मकरं चैरावतं गोत्रभिद्
वागदेवीतु मयूर मित्थ ममितः केषांनवाविस्मयः ॥३२॥

भा० टी०—ब्रह्मा जी हंस की सवारी करते हैं लक्ष्मीनाथ गरुड़ पर शंकर बैल पर गणेश मूसे पर अग्नि मेढ़क पर धर्मराज महिष पर कामदेव मच्छ पर इन्द्रराज हाथी पर सरस्वती मोर पक्षी पर इस प्रकार देख कौन अति, आश्चर्य नहीं होता आपकी लीला आप जाने ॥३२॥

बृहस्पते : क्षेत्र समुद्भवोऽपि दोषाकराज्जन्मनि सुप्रतीतः।
ग्रहेषु वारेषु बुधोऽतिपूज्यः विधेर्दया विश्रुत संकरेऽस्ति ॥३३॥

भा० टी०—गुरू बृहस्पति की भार्या से उत्पन्न भी चन्द्रमा के वीर्य से जन्म के निश्चय वाला बुधदेव ग्रहों में और वारों में अतिशय कर के पूजनीय है। प्रसिद्ध संकर में विधि रूप आपकी दया है जिससे दोष निवृत्ति और गुण गौरव प्रकट हुआ पर्व उक्त श्लोक का अर्थ इतिहास पुराण के ज्ञाता यथार्थ रूपसे जान सकते हैं हे नाथ आपंकी दयाकी अति महिमा है ॥३३॥

कासं विधत्ते श्वसनं पिधत्ते मांद्यं क्षुधाग्नौ दृशिवा प्रदत्ते।
वातोल्वणा शुक्र बलं निहन्ति किंकिंचराकांचनकालकन्या ॥३४

भा० टी०—त्रिभि विशेषकम् खांसी करती है और श्वास को रोकती है भूख की अग्नि कोमंद तथा नेत्रोंमें निर्बलता देती है अति वायु के कोप करके वीर्य बल को नष्ट करती है यह काल कन्या क्या क्या नहीं करती ॥३४॥

पुराहि लोकेषु पतिम्वरासा बभ्राम देशेषु निभालयन्ती ।
पतिं न लब्ध्वा सहसारुरोदविधेर्वरेणाऽखिलजीव भोक्त्री ॥३५

भा० टी०—पुराजन समय में यह काल कन्या जरानाम वाली यौवन को प्राप्त विधि के पास गई उनकी आज्ञा से स्वयं पति प्राप्ति के निमित्त सब देशों में घूमी परन्तु जरानाम सुनकर किसी ने अंगीकार नहीं की निवृत्त होकर अग्नि रोदन करने लगी जब यह वर मिला जीवमात्र के भोगने वाली सूक्ष्म रूप होकर शरीर में प्रवेश करेगी ॥३५॥

इयं जराकष्टशतप्रचारा वृहद्विकाराऽत्यनिवार्यकारा ।
जन्तूपदां यच्छति मृत्यवे सा तथाऽपि पुंसां न हरेर्विचारः ।३६

भा० टी०—यह जरा अवस्था की कथा है । अनेक कष्टों के देने वाली बहुत विकार युक्त दूर न होने वाला कारागार है जीवों की मरण रूप भेट उपहार मृत्युदेव को दे रही है इतने कष्ट होने पर भी जीवों को हरि का विचार भक्ति श्रद्धा नहीं होती मोह माया प्रवल है (यह महा भारती कथा है) ॥३६॥

जगद्विहार प्रति पत्तिहोतोः त्वं पुष्पवन्तौ धृतवाननन्ते ।
अनन्तते तत्र दयाविशाला क्वचिद्गृहणीया तु महाकराला॥ ३७

भा० टी०—हे अनन्त भगवान् संसार का कार्य सिद्धि के लिये आकाश में आपने सूर्य चन्द्रमा स्थापन किये वहां तो आपकी

दया बहुत अधिक है हे जगन्नाथ किसी स्थान में आपकी घृणा भी कराल रूप है यह देवी मनुष्यों में देखा गया हैं ॥३७॥

फला शिनां क्वापि तथा पलाशिनां
विसाऽशिनां रोषवशाद् विषाशिनां ।
त्वमन्तरस्थः समतो निरीक्षसे
किमन्तरंते हसने च रोदने ॥३८॥

भा० टी०—हे नाथ जो कभी फल आहार करते हैं तथा सदा मांस ही भक्षण करते हैं जो वनों में पद्मनाल खाकर निर्वाह करते हैं वा जो क्रोध वश होकर विषभक्षण करते हैं तुम सब के अन्दर बैठ कर समान दृष्टि से देखते हैं आपको हंसने और रोने में कोई भेद नहीं प्रतीत होता तुम साक्षीमात्र हो ॥३८॥

जीवामि या वन्नतरांत्यजामि तावद्भवन्नामजप प्रयासम् ।
मोघोऽस्त्वमोघः सकलज्ञताते प्रयत्न कर्त्तुर्नममाऽपराधः ॥३९॥

भा० टी०—हे प्रभु जब तक जीता हूं तब तक आपके जप पाठ नियम को नहीं त्यागना सफल हो या असफल हो। तुम सर्वज्ञ हैं यत्न करने वाले हमारा इसमें कोई अपराध नहीं ॥३९॥

कुटुम्ब पालोयदि भूविभागे त्वं मादृशस्यास्तु तदा प्रपश्येः ।
संसार कष्टोदधि चक्रमध्ये परि भ्रमन्जीवगणं पतन्तम् ॥४०॥

भा० टी०—हे नाथ आपभी हमारे समान कुटुम्ब पालक गृहस्थी बने तब सर्वत्र भ्रमण करते अनेक कष्ट के समुद्र में गिरती जीवों की पंक्ति को देखे जब आपको प्रतीत हो ॥४०॥

सच्चिन्महानन्दघन स्त्वमेव जीवः पृथक् रोदितिकर्मभि ःस्वैः ।
न चंचुबोधेन फलोप लब्धिर्भेदोऽनयोः सिध्यति रोदसीव॥४१

भा० टी०—हे नाथ आप सत्त चित् महानन्द घन ही है जीव आपसे पृथक है अपने कर्मों करके रोता है ज्ञान की वार्त्ता पंचु ज्ञान से कुछ लाभ नहीं इन दोनों का भेद भूमि आकाश के समान् प्रत्यक्ष है ।।४१।।

जराभयं रोग भयं तथैव
मृत्योर्भयं नः तरसोपपन्नम् ।
त्वं निर्भयस्त्वद् भयतश्चरन्ति
दिवानिशं वायुमुखाश्च देवाः ।।४२।।

भा० टी०—हम को जराका भय रोगों का भय जैसे ही मरण का भय वेगसे प्राप्त हो रहा है तुम निर्भय हो आपके भय से दिन रात वायु आदि देवगण रक्षा के निमित्त कार्य कर रहे हैं ।।४२।।

पापाऽपहः पापपरस्त्वमीदृक्
शान्तं न पापं ममपापिनोऽपि ।
सदावितापावयिता यतोऽसि
त्रिभोनवाऽति क्रमणस्यकालः ।।४३।।

भा० टी०—हे जीवेश आप पापों के नाश करने हारे और पापों से से परे अर्थात् शुद्ध स्वरूप इस प्रकार के हों हम पापियों का भी पाप क्षमा नहीं हुआ सदा रक्षा करने हारे पवित्र करने वाले जिस लिए आप हो जो यह उल्लंघन अर्थात् टालने का समय नहीं । कोई देश अपनी कलादि कौशल के प्रभाव से अपने को सतयुगी कहते हैं सोने के सिक्के चलते हैं रेल तार हवाई जहाज रेडियो सिनमा आदि से असंख्य धन संग्रह करके सुखी है वहां कलियुग है ही नहीं । ना हीं पाप को पाप नाहीं धर्म को धर्म कहते हैं भारत देश

उत्तम देश है इसमें शास्त्र कृत धर्म को धर्म पाप को पाप हम मानने वाले हैं और हमें पापों से रक्षा करो ॥४३॥

बद्धाभिमानी सततं प्रबद्धः मुक्ताभिमानी किलमुक्त एव ।
गतिर्मता मत्यनुरूपतायां श्रीदत्तगीता लिखितोपदेशः ॥४४॥

भा० टी०—जो जन आपको बांधा हुआ मानता है वह बांधा हुआ है जो मुक्त मानता वह मुक्त होता है गति मति के अनुसार है यह भी दत्तात्रेय महायोगी वचन उपदेश गीता में हैं साधुवर्णन साधन नहीं ॥४४॥

पूर्णस्त्वमात्मा यदि देह जीवः
आकाश वन्निष्क्रिय निश्चलोऽसि ।
गतागते तत्र नयुक्ति सिद्धे
विलक्षणा शास्त्र जगद् व्यवस्था ॥४५॥

भा० टी०—हे नाथ यदि आपही पूर्णरूप आत्मा देह के जीव हो तब आकाश के समान निष्क्रिय और निश्चल हो तब जीव का आवागमन पुनर्जन्म युक्ति द्वारा सिद्ध नहीं है परन्तु न्याय सांख्य आदि शास्त्रों में जगत की व्यवस्था और प्रकार की है ॥४५॥

पुरा प्रसिद्धा भुवि सिद्धयोऽपि स्वदास भावं स्मजनान्नयन्ति ।
कश्चिन्नसिद्धो न च सिद्धिरद्य संशीतिरेवं ग्रसते प्रचारम् ॥४६

भा० टी०—पहले समय में भूमि पर वहुत प्रकार की सिद्धियां अर्थात् करामातें देखी गई उन्होंने लाखों को अपना दास भक्त शिष्य बना लिया पुराने मतों में हिन्दु मुसलमान ईसाई जैन आदि में हुई परन्तु इस समय में कोई सिद्ध नहीं ना सिद्ध देखी गई संशय युक्त

प्रचार को ग्रसता है अर्थात् प्रथम भी कथनमात्र महिमा थी वास्तव में सत्य नहीं ॥४६॥

इत्यादि शंकाविषविह्वलानां चेतांसि धावन्ति च कापथेषु।
भ्रमाऽर्णवा दुद्धर मां मुकुन्द त्वं कर्णधारः किल पारकारः।४७

भा० टी०—इस प्रकार अनेक शोक रूपी विष से व्याकुल हो मतमतांतरों में उनके चित्त दौड़ रहे हैं हे मुकुन्द हमें भ्रम सङ्कट समुद्र से उद्धार कर तुमही मल्लाह होकर संसार से पार करने वाले हो ॥४७॥

कामी भवान्नैव सहस्रभार्यो न क्रोधनो ध्वस्त विसंख्य दैत्यः।
लोभी न रत्नोदधि सद्मवासी रमां तथास्वां रमणीं प्रचक्रे ॥४८

भा० टी०—सहस्त्रों भार्या आय की है परन्तु आपका भी नहीं आप क्रोधी नहीं असंख्य दैत्यों के नाश करने वाले हो। लोभी नहीं रत्नों के समुद्र रूपी गृह में वास करते और लक्ष्मी को अपनी धर्म पत्नी किया है ॥४८॥

मोही नवामोहन रूपधारी विभूति वर्गेष्वनहंकृतिस्ते।
स्वयं स्वतन्त्रो भगवानलेपः कृतेऽकृते सर्वसमः समानः ॥४९॥

भा० टी०—आप मोह युक्त नहीं हैं मोहन रूप धारण कर जगत को मोहने वाले हो। श्री गीता के दशम विभूति अध्याय में आपका अहंकार भी नहीं है आप स्वतन्त्र निर्लेप भगवान हो करने पर न करने पर सव समहो पुनः आपका मान प्रतिष्ठा भी बनी है ॥४९॥

जाराग्रणी र्वानवनीतचौरः परम्परातोऽपि यशः प्रसिद्धम्।
परैर्विवादः कथिताऽनुवादः हरे कथंचिन्नतवाऽपवादः ॥५०॥

भा० टी०—जारों में मुख्य और माखन चोर यह यश आपको महा कवियों ने प्रसिद्ध रूप लिखा है। श्लोकों द्वारा यह विवाद श्री वेदव्यास जी ने लिखा है इत्यादि के कथन का यह अनुवाद है हे हरे किसी प्रकार भी आपकी निंद्रा नहीं क्षमा करें ॥५०॥

वयं विकुर्म्मो यदि किंचिदेव तदाऽति कष्टे नरके पतामः।
सर्वाविपन्मानुषमात्रजाता वस्मासुनिर्लेपगतिं विधत्स्व ॥५१॥

भा० टी०—हे नाथ यदि हम लोग कुछ भी विरुद्ध कर्म करते हैं तब अति दुखदायी नरक में गिरते हैं कर्मों के दंड रूपी सारी विपदा मनुष्य जाति पर है आप हमारे में भी निर्लेप धारण करें हम भी मुक्त हो यह सब आपकी प्रेम दृष्टि है ॥५१॥

संस्थापितो यो भवता कलिस्सः ग्रसिष्यते त्वां स्वयमेवमत्तः।
न सम्यगागम्य निरीक्षम ण सम्राजमप्याशु जयन्तिभूपाः। ५२

भा० टी०—जो आपने युग स्थापना किया है यह शनैः शनैः बलवान होकर आपको ग्रस जावेगा जो चक्रवर्ती राजा भी अपने राज्य में जाकर अच्छी प्रकार न्याय विचार दड आदि नीति का ध्यान नहीं करता उस चक्रवर्ती को और राजा जीत लेते हैं ॥५२॥

नमंस्यते भक्ष्यति कोऽपिनत्वां श्रद्धाजनानां त्वयि नंक्ष्यतीति।
स्वभावादो नृषु बुद्धिसिद्धः उच्छृङ्खलोना कुरुते यथेष्टम् ॥५३॥

भा० टी०—आप प्रकट होते नहीं किसी को दर्शन दिया नहीं अतः इस युग के नास्तिक लोग निरीश्वरवादी न मानेंगे न भजन करेंगे नाहीं श्रद्धा करेंगे। स्वभाववाद आगे प्रसिद्ध है निर्लज्ज निर्भय धृष्ट पुरुष जो चाहे सो करे प्रेम महिमा। कलौदशसहस्राणि हरिस्त्यजति मेदनी ॥इति॥५३॥

बुद्धोऽसिपूज्यो नवमाऽवतारो महातपा स्त्यागविरागमूर्त्तिः ।
त्वदुक्तिरेषा कलिवर्द्धनाय न वैदिकं कर्म नवर्णवादः ॥५४॥

भा० टी०—आप बुद्ध नाम पूजनीय नवम ९ अवतार हो आप महा तपस्वी त्याग विराग की मूर्त्ति है आपका यह उपदेश युग की बृद्धि के लिए है ना हीं वेदों के अनुसार कर्म का करना तथा ना हीं ब्राह्मण छत्रिय, आदि वर्ण व्यवस्था मान्य है ॥५४॥

मृत्योर्मुखं संविशतां जनाना मेकोऽपिनायाद् यमवर्णनाय ।
न पूर्व जन्मस्मृतिरागतानां जागर्त्ति शंका जनितः कलंकः ।५५

भा० टी०—अनेक जन मृत्यु के मुख में प्रवेश अर्थात् मरण को नित्य प्राप्त हो रहे। उनमें से एक भी यमराज स्वर्ग, नरक का वर्णन के लिये नहीं आया, जो आए हैं उनको पूर्व जन्म की स्मृति नहीं। अतः इससे अनेक शंका और बुद्ध उपदेश मतमतांतरों की उत्पत्ति परस्पर बैर, विरोध, हठवाद विस्तार को प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण जी का वाक्य है—"भूतग्रामः सएवायं भूत्त्वा भूत्त्वा प्रलीयते" सब जीव अनेक जन्म भोग कर आए हैं कोई निश्चय करके कह नहीं सकता। मेरा अमुक जन्म था श्री बुद्ध से लेकर पीछे जैन ईसा महात्मा, श्री मुहम्मद जी आदि अनेक शाखा, मत फूट का कारण प्रकट हुई ॥५५॥

क्षुरस्य धारेव स दुर्ग पंथा उल्लंघितः संयम कर्म वीरैः ।
अध्यासदेहेन्द्रिय हृष्टचित्ताः पथं कथंकारमति व्ययेयुः ॥५६॥

भा० टी—उस्तरे की धार के समान वह कठिन मार्ग संयम धारी कर्मवीरों ने लांघ लिया, जो अध्यासवश है। वे इन्द्रिय प्रेम में लगे हैं वह किस प्रकार इस मार्ग को लांघ सके, कठिन है ॥५६॥

सर्वे लोका राष्ट्र भाषाऽनुरक्ताः काले वाचः संस्कृतायाविरक्ताः
बृद्धाविद्यासाऽपि वंध्याप्रदत्ता संपत्स्यन्ते किंतया संपद्येनः ॥५७

भा० टी०—सब लोग राष्ट्र भाषा अंग्रेजी के प्रेमी अति लाभ युक्त हैं। इस समय संस्कृत विद्या से विरक्त अर्थात् इसके पठन पाठन को त्याग रहे हैं। हमें यह बूढ़ी विद्या और बांझ दी अर्थात कोई संस्कृत विद्वान् उच्च न्यायाधीश, मिनिस्टर व राजमन्त्री नहीं बनता। अतः बन्ध्या कही कि इस से क्या संपदा हमको प्राप्त होगी, निर्वाह मात्र ही है ॥५७॥

इत्याद्युपालम्भ वशान्नरोषः कार्यः स्ववत्सेषु च वत्सलोऽसि ।
क्षमाक्षमानाथतवाऽस्ति भूषा वाचाल बालोक्तिरियं न दोषः॥५८

भा० टी०-इस प्रकार आप के प्रति ननु, नच, शंका-समाधान प्रश्न व निहोरे आदि कठिन शब्द व अयोग्य वचनों से आपको क्रोध न करना, अपने दासों के प्रेमी हो और हे क्षमानाथ क्षमा करना आपका भूषण है। चंचल बालकों की उक्ति दोष नहीं स्वभाव ही है आप से न कहें तो किसको सुनावें तथाऽपि अपराध क्षमा करें ॥५८॥

योगं तथा क्षेम महं वहामि परानुरक्तेषु विरक्तहृत्सु ।
इयं प्रतिज्ञा जगती समज्ञा साऽस्मादृशेष्वेव जनेष्ववज्ञा ॥५९॥

भा० टी०—विरक्त परम प्रेमी भक्तों का योग क्षेम हम करते हैं। यह आपके प्रति भूमि पर यश रूप है परन्तु वह हमारे जैसे जीवों अर्थात् सीधे साधे गृहस्थों का निरादर है। आपका उधर प्रेम हमारी ख़बर कौन लेगा ॥५९॥

सोपप्लवे पंचनदे विभक्ते नकस्यचिद् योग तपो बलं वा ।
दृष्टं सतीनां निधनं, नदादौ बलीयसो भार्य्यापरिस्थितिर्हि ॥६०

भा० टी०—पंजाब देश के विभाजन होने पर अनेक उपद्रव आरम्भ हुए किसी का भी योग तप, भजन पाठ, बल नहीं देखा ; केवल सती देवियां, दरया, नदी व रूपों में भरी हुई देखी। निश्चय है भावी मर्यादा अति बलवान् होती है ॥६०॥

केषां चिदेषां तदुपद्रवेषु श्रद्धाऽपि दोलाग्र मिवाधि रूढा ।
प्राणेश ! हे जीवन तत्त्वदातः ! सास्थेयसीनः परिवर्त्तनेषु ॥६१

भा० टी०—पंजाब के उपद्रवों में कई इन लोकों की धर्म में, ईश्वर में श्रद्धा चलायमान देखी किसी भी मतवादी ने कोई प्रकाश नहीं दिखाया। हे प्राणनाथ ! हे जीवन तत्त्व के दाता हमारी वह श्रद्धा अनेक परिवर्तन में भी स्थिर है, आप की कृपा से निरन्तर स्थिर रहे ॥६१॥

गवां प्रणाशो द्विजदेवनिन्दा वेदाद्युपेक्षा शुभ कर्म हासः ।
नजातिमानं समये नराणां दरिद्रता सर्व विपत्प्रतिष्ठा ॥६२॥

भा० टी०—इस समय में गौड़ों का नाश ब्राह्मण और देवता की निन्दा वेद आदि सत् शास्त्रों का अनादर शुभ कर्मों की हानि केवल धन की महिमा है, दरिद्री पुरुष पर सब विपदा आती हैं ॥६२॥

षड्यन्त्र मूतं भवमाययामा
मनारतं मोचयिता पिताऽसि ।
निर्याणदिष्टो नियतोऽस्त्व कष्टात्
केनाऽपि नाज्ञायि तु मृत्यु वेला ॥६३॥

भा० टी०—संसार की माया करके षड्यंत्र में बंधे हुए हमको सदा छुड़ाने वाले परम पिता हो। अन्त में होने वाला समय सुख पूर्व कहीं नहीं कोई अपनी मृत्यु का समय जानता है ॥६३॥

सुप्ता ग्रहाः सत्फल दान वीरा जागर्ति नित्यं सतुमारकेशः।
पाटच्चरो लुण्ठति जागरूको वसु प्रसुप्तस्य निराश्रयस्य॥६४॥

भा० टी०—हमारे शुभ फलदायी ग्रह सोये हुए है. शरणार्थी जनों ने प्रत्यक्ष फल देखा है। मारकेश संग्रह तो नित्य जागता है जागने वाले चौर सोये हुए निरासरे पुरुष के धन को लूट लेते हैं, पंजाब पार्टीशन का फल है ॥६४॥

नाके स्थिरं कंनच भारतेऽपि याचेऽपवर्गं भुवनाधि नाथात्।
कलिप्रजा म्लेच्छ तमा भविष्ये जन्मान्तरे तत्र कुतस्तदाशा ॥६५

भा० टी०—स्वर्ग सुख कुछ काल तक होता है सदा नहीं, भारतवर्ष में भी अब सुख नहीं। इसलिए चतुर्दश भवनों के स्वामी से हम मुक्ति मांगते हैं। भविष्यत् समय युग की प्रजा अति महा म्लेच्छ होने वाली है फिर जन्म में कहां से मोक्ष की आशा हो सकती है ॥६५॥

घृष्टातुमाला जप पुस्तकानि शीर्णानि जीर्णं च कलेवरं मे।
देवालये प्रत्यहमेव पूजा प्रदक्षिणाद्यं मृड तुष्टयेऽस्तु ॥६६॥

भा० टी०—हे हरि! आप के नाम जपते २ कई मालाएं टूट गईं, कई पाठ पुस्तक श्रीगीता विष्णु सहस्रनाम उपनिषद् आदि फटे शरीर भी वृद्ध हुआ। मन्दिर में प्रति दिन आरती पूजा प्रदक्षिणा आप को प्रसन्न करने वाले हों ॥६६॥

घूकाः प्रसीदन्ति घनांधकारे मलिम्लु चा वित्तमुषश्च यत्नात्।
सीदन्त्यनालोक वशेन लोका मनोरथाऽऽप्तिर्हिसुखं जगत्याम्।६७

भा० टी०—उल्लू आदि पक्षी अति अंधकार में प्रसन्न होते है और धन चुराने वाले चोर आदि भी यत्न से प्रसन्न होते हैं परन्तु

सब लोक अन्धकार वश दुःखी होते है जगत् में मनोरथ की प्राप्ति सुख है। असुर संप्रदाय के लोग छल छिद्रों से अति प्रसन्न हैं पर दैव संप्रदाय के लोग देख कर दुःखी हैं मनोरथ प्राप्ति सुख है जगत् में ॥६७॥

वृन्दारकैर्वन्द्य, विधेहि कल्यं भट्टारकैर्भावितनामधेय।
सर्वोच्च कोटी मधितस्थुपस्ते पादाब्जयोर्मामुपसे दिवांसम् ॥६८

भा० टी०—देवगणों करके नमस्कार को प्राप्त, महाराजाओं करके आपका नाम पूजित है आप सर्व प्रकार के सब से उच्चकोटि पर स्थित है हम आपके चरणों में गिरे हैं हमको नीरोग करो ॥६८॥

रूपं च दृग्भ्यां शिरसा प्रणामः पूजा कराभ्यां वचसा च नाम।
घ्राणेन गंधः क्रमणं हि पद्भ्यां श्रुत्या कथा मंगलमेव सर्वम् ।६९

भा० टी०—भगवान् की सगुण भक्ति करने वाले भक्तों को सब प्रकार मंगलाचार है। शरीर के अंगों से देव की सेवा होती है यथा नेत्रों करके रूप दर्शन देवालयों में सिर से प्रणाम हाथों से पूजा जिह्वा से नाम जप, नासा से तुलसी धूप आदि गंध चरणों से परिक्रमा सुनने से कथा सर्व प्रकार अंगों से देव सेवा है ॥६९॥

समाधियोगस्थि तिमन्तरेण तमोहृदः केवल निर्गुणेष्टाः।
श्रुतिर्जगौ स्पष्ट मिदं नविघ्नः वार्ता परेषां कृतमातु तेषाम् ।७०

भा० टी०—योग समाधि के बिना केवल निर्गुण के उपासक हैं उनकों हृदय में अंधेरा ही प्रतीत है योग से ज्योति दर्शन है। श्रुति भगवती यह साफ कह चुकी है—न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग गच्छति नमनोनविद्मोन विजानीमः। इत्यादि निराकार को दुर्विज्ञेय कहा है उन कलि जनों की क्या बात जो राग द्वेष निन्दा स्तुति में है संयम सदाचार से रहित है ॥७०॥

नविप्रतीसार परस्य पंके
जिहासतः संयमसाधनानि ।
शुष्कै स्तु खं पातयतो वचोभिः
कानिर्गुणाद्वासगुणा त्वलब्धिः ॥७१॥

भा० टी०—जिसको पाप करने पर पश्चात्ताप नहीं जो संयम के साधने को त्यागने की इच्छा करता है केवल सूखी बातों से आकाश गिराता है ऐसे जनों को निर्गुण से वासगुण से क्या लाभ है वह तो पामर है ॥७१॥

कालः प्रतीक्षेत कृताऽकृतेन
त्वरामहे रामपरानुरक्तौ ।
अरुन्तुदाः कर्ण रुजोयमाद्या
आद्योऽनवद्योऽवतुनो भयेभ्यः ॥७२॥

भा० टी०—काल भगवान किसी के किये ना किये को नहीं उडीकता । हे राम ! हम भी प्रेम भक्ति में शीघ्रता करते हैं यमलोक नरकादिक दुःख हृदय को दुःखदायी सुनने से भी भयदायी है वह शुद्ध स्वरूप आदि भगवान् हमको भयों से रक्षा करे रक्षा करे ॥७२॥

स्तुतिर्महिम्नः नपरा परस्य
हरस्य तद्दोष निवृत्ति हेतुः ।
अभ्यस्यतां सत्फलदा सदाऽस्तु
कः पुष्पदन्तेनसमोऽस्थिदन्तः ॥७३॥

भा० टी०—महिम्नः नपरास्तु तः यह कथा प्रसिद्ध है गंधर्व पुष्पदन्त का शाप पाप दूर हुआ पाठ करने वालों को श्रेष्ठ फल देने वाली हो पुष्पदन्त के समान अस्थिदना कौन है हमारे दान्त अस्थि रूप है उसके दान्त पुष्प समान थे क्या समानता होती है ॥७३॥

घना घटा गर्जति साम्यवादमयीतु वर्षिष्यति चेद वश्यं।
तदा तदाऽप्लावितमेवबवर्ष संलप्स्यतेऽपूर्वतमं स्वरूपम् ॥७४॥

भा० टी०—हे नाथ साम्यवाद श्री बुद्ध उपदेश रूपी घना घटा गर्ज रही है सर्वत्र उसका प्रचार हो रहा जिन समय पूर्णरूप से बरस जावेगी यदि तब भारतवर्ष का स्वरूप आश्चर्य होगा नहीं जाति कुल वर्ण धर्म वे शास्त्र पुरातन रीतियों को बहा देगी एक वर्णता में आपको उच्च श्रेष्ठतम मानेंगे हा काल महिमा और प्रभु की इच्छा ॥७४॥

स्फुटति यत्रनवा कुसुमावली
किसलयैर्मृदुलैः परिवारिता।
हरति कस्यमनो नहि पश्यतः
स्पृशति कः शितकंटकिनंद्रुमं ॥७५॥

भा० टी०—समाप्ति में और छन्द है जिस स्थान पर सुन्दर अनेक प्रकार फूलों के समूह हरे हरे पत्तों के सहित खिले होते हैं देखने हारे किस मनुष्य के मन को नहीं हर लेते और तेज कांटे वाले वृक्ष को कौन छूता है देखने में भी भय है कंगाऽर्थ यह है इस समय प्रेम मार्ग का आश्रय करने वाले सिनेमा, रेडियो, जिन्दानाच होटलों में अति प्रसन्न होते हैं और श्रेयमार्ग ब्रह्मचर्य त्याग विराग भजन आदि कर्मों को कलियुगी जन किस प्रकार स्पर्श करे मुक्तिमार्ग कठिन है ॥७५॥

स्तुति मुक्तावलीं पुण्यां श्रद्धया त्रिलतां पठेत्।
तस्य देहे चगेहे च सुखसौभाग्य संपदः ॥१॥
गुणैकशून्य नेत्रेऽब्दे वैशाखेरवि सं क्रमे।
पूर्णेयं परिपूर्णस्य स्तुति मुक्तावली त्रिधा ॥२॥

भा० टी०—यह तीन लता वाली स्तुति मुक्तावली को श्रद्धा से पढ़े उसके गृह में तथा देह में सुख सौभाग्य संपदा वास करती है २०१३ संवत् बैशाख से क्रांति पर परिपूर्ण अर्थात् देवरूप अवतार रूप परमात्मा की स्तुति पूर्ण हुई तीन प्रकार की अध्याय संज्ञा भेद भावयुक्त अर्थात् यह तीन लड़ा मोतियों का हार भगवान के अर्पण किया जाता है ॥१॥

नपांडित्यं न लालित्यं केवलं शब्द योजनम् ।
श्रद्धया ऋद्धया सद्यः प्रीयतां परमेश्वरः ॥२॥

भा० टी०—कवि परम श्रद्धा द्वारा परमेश्वर को प्रसन्न करता इस कविता में पंडिताई भी नहीं रसता भी नहीं केवल शब्द योजन मात्र है प्रभु प्रसन्न हो ॥२॥

तेजोभानु कविं विदां कुलपतिः श्रीविष्णुदत्ताऽभिधः ।
प्रासोष्टाऽऽत्मज मेक मेव जननी गंगाख्य देवी च यं ।
तेने तेन नुतिर्नतेनमनसा नानाऽर्थ मान प्रदा ।
वैराग्यादि शतत्रयीं कत्रयता काव्यै रनेकैर्युताम् ॥४॥

भा० टी०—श्री तेजभानु कवि पंडित शिरोमणि श्री विष्णु दत्त जी के गृह में श्री गंगादेवी माता द्वारा एक पुत्र उत्पन्न हुए उन्होंने नम्र हृदय से यह स्तुति बनाई असेक कामना के पूर्ण करने वाली जिन्होंने वैराग्य शतक आदि काव्य ग्रन्थ रचकर पंजाब पश्चिम प्रान्त रावलपिन्डी आदि नगरों में उत्तमकीर्त्तिप्राप्त की ॥४॥

रावल पिंडी नगर निवासी प्रधान पाठशालाऽध्यापकाऽध्यक्ष
श्री विष्णु दत्तानामात्मजेन मुद्गालवंश भूषण अभिनव
भर्तृहरि, कविरत्न, श्री तेजभानु शर्मणा
विरचितास्तुति मुक्तावली त्रिलता समाप्ता

॥ शुभम् भूयात् ॥

अथ देवाश्व धाटी काव्यम्

देवाः सदा पुनरदेवा समस्तवरदेवाऽधिदेवपदयोः ।
देवालये नतव केवा गुणाऽनुगुणनेवाऽसमर्थं हृदयाः ॥
येवा महापुरुष सेवारताश्च भजनेवाढ मुद्यत हृदाः ।
तेवा कथं न सुपदेऽवाप्तयेऽतितरसेवाऽतियान्ति पुरुषाः ॥१॥
कान्ता स्वभाव परिशान्ता स्वसंतति नितान्ताऽतिहार्दनिरताः ।
सान्तायभवति सान्ता विरक्तजन दान्ताऽत्मनि स्फुरतिनो ॥
वान्ता स्तथा जगति नान्ताय सन्ति विषयान्ताः कलेवरधृताम् ।
यान्तः समे धृतभयान्तः क्रमाः पथि स कांतारके पितृपतेः ॥२॥
गोपी जनोपकृति गोपीथ दैत्य शतलोपी निरंतरदयः ।
गोपीत दुष्ट जल कोपी भुजंगदम कौपीन सत्परिकरः ॥
कोऽपीदृशो नगिरिरोपी करे निखिल गोपीड़नाऽस्तिसमये ।
सोऽपीष्ट पूर्त्ति करणोऽपीन वाहु चरणोऽपीत पीतवसनः ॥३॥
मायापरः कथमु मायात् गृहस्थ धन जाया विमोहनिरतः ।
पायास्त्वमेव दुरपायाद् स्वभक्तहितकायः सुखैकशरणः ॥
रायश्च सन्त्य सुखदायावदात्म कुल दायादलुण्ठनपराः ।
यायावरेष्वभितनाया गृहं परिविहायागमन्सुरनदीम् ॥४॥
योगीश्वरोदितदयो गीतरास हृदयो गीत या भवगुरुः ।
योगीविवाद बहुरोगीयते सकल भोगीश्वरेणविनतः ॥

योगीष्टदेव रुचिरोगीर्णो सत्समुदयोगीऽयतेरपि महान् ।
रोगीवगेह सुखभोगी त्वहं कुमति योगी त्वदाश्रयपरः ॥६॥
बालः सदा कुकृति कालः स्वचित्त सुत बाला व्यतीत समयः ।
कालायसैक करवालः ममग्रह्वर कालः प्रहारचतुरः ॥
माला करे वसति भालस्त्वदीय चरणालान लग्नमुकुटः ।
पालस्त्वमेवतु मदालाप कल्पनरसालः प्रकृष्टकरुणः ॥६॥
कर्त्ता स्वयं भवविवर्त्तः पुराण परमर्त्तः समस्त जगताम् ।
हर्त्ता क्षणेन जनिगर्त्तात् स्वभक्त गणभर्त्ता स्वभावविशदः ॥
स्मर्त्ता गदाऽतिदरधर्त्ता भवेच्च सुखमर्त्ता गताऽऽगतवशात् ।
सर्त्ता भवाच्च पुनरर्त्ताऽऽचिरेण परिहर्त्ता विशेष विपदां ॥७॥
दीनात्म को मनसिदीनार लाभमति मीनाऽऽध्वजोद्भवरसः ।
कीनाश दुर्विपद धीनः प्रणाय जलमीनः प्रदानकृपणः ॥
हीनः कुरूप गणपीनः कुटुम्ब रसलीनः प्रमुग्ध हृदयः ।
वीनाधिरूढ परिजीनः त्वमेव मदभीनः प्रपाहिदयया ॥८॥

देवाश्वघाटी काव्यस्य प्रयत्नात् क्लिष्ट कल्पना ।
मुदे देवाऽधिदेवस्य भूयाच्च विदुषांसताम् ॥९ ।

इस देवाऽश्वघाटी काव्य की कल्पना क्लिष्ट है, बहुत यत्न से रची है। इसमें संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित वर अपने बुद्धि वैभव द्वारा शब्दार्थों का विचार स्वयं करें।

कविरत्न श्री तेजभानुकृता अश्वघाटी समाप्ता ।

॥ इति ॥

अथ महा दुर्गाऽनुप्रासाष्टकम्

महा दुर्गे दुर्गे जगति जन दुर्गेय चरिते
बुधैर्वृद्धे शुद्धे सपदि नहि बुध्ये त्वदुपमाम् ।
दुरागाध्ये साध्ये नियमित समाध्येक विषये
तवाऽधीन दीनं किमु चरणलीनं विसृजसि ॥१॥

अमन्दे स्वच्छन्दे निखिल भवसंदेह दलने ।
प्रचण्डे चामुण्डे युधि निहत चण्ड सुरनते ।
चिदानन्दे वन्दे पद कमल कन्दे प्रतिदिनम् ।
महामाया पायादपि जगदपाया दनुपलम् ॥२॥

महावीरे धीरे भवजलधि तीरेऽति सुखदे
शिरोमाले बाले कर धृत कपालेऽतिविकटे ।
अपर्णे सद्वर्णे शृणुममच कर्णेन रुदितम् ।
असारे संसारे कपटशत भारे निपततः ॥३॥

पिता माता भ्राता त्वमसि ममतात स्सुललिते
दयासिन्धु वन्धुर्विकट जगदन्धूप करणी ।
तवाऽऽयत्तं वित्तं गृह सकल वित्तं शिखरिजे
तथा देहो गेहोऽसिमम सकलं त्वं जन नते ॥४॥

अहं कामी वामी पर शयन गामी स्मरवशः ।

तथाऽबोधी क्रोधी बुधजन विरोधी च कुहकी
महा लोभी द्रोही निखिल खल दोही धन पर ॥५॥

असन्तुष्टो दुष्टोऽपर कवल पुष्टोऽस्मि सततम्
अहंकारी नारी जन धृत विकारी पृथुदये।
निरानन्दो मन्दोनिहित भव बंधो निरूपमे
सदा लंबे लंबे जगति जगदम्बे डितपदम् ॥६॥

शवाऽरूढे मूढे कुरु निगमगूढे करुणाम्।
प्रयाचेत्वां याचे न पर मपि वा चेतन कले
विहारं व्याहारं सदसि सहसारंभ कुतुकम्
तथा भुक्तिं मुक्तिं तदनुभवदुक्तिं प्रतिपलम् ॥७॥

मनोज्ञाऽप्येनोज्ञा सपदि सुमनो ज्ञानविदिता
जगत् कर्त्री भर्त्री लय समय हर्त्री गुणमयी
महाविद्या हृद्या सतत मन वद्याऽस्ति भवती
यशोदे ते मोदे कृत वहुविनोदे स्मरणतः ॥८॥

इतिश्लोकानष्टौ भव सकल कष्टौघशमनान्
कविस्तेजोभानुः कुल युगल भानू रचितवान्।
सकिं भूमौ दिवि पूज्यो भवति [illegible]
पुनीते योऽधीते वपुरपि लुनीते स्वकल[illegible]

कविरत्न श्री तेजभानु शर्म्मणा विर[illegible]
श्री दुर्गानुऽ[illegible]ष्टकं पूर्णम्॥